मूल्य 20 रुपये

चौथी दुनिया

दिल्ली रविवार 5 जुलाई 2009

हिन्दी का पहला साप्ताहिक अखबार

भीतर

3
भाजपा : हम नहीं सुधरेंगे

9
नदियों को भी बेचने को तैयार सरकार

16
1984 सिख दंगा : मौत का नंगा नाच

लालगढ़ की लाल लपटें

पश्चिम बंगाल के लालगढ़ में आग सिर्फ़ पिछड़ेपन और सरकारी सुविधाओं के असंतुलित बंटवारे की चिंगारी से लगी है. लेकिन समस्या की जड़ तक पहुंचने के बजाय सियासत की बाज़ी खेली जा रही है. केंद्र सरकार ने सीपीआई (माओवादी) पर प्रतिबंध लगा उसे आतंकी संगठन घोषित कर दिया है. माकपा इसके ख़िलाफ़ आस्तीनें चढ़ा रही है. दरअसल इन सबके बीच असल सवाल को छिपाने की साज़िश रची जा रही है. आख़िर हालात इतने बेक़ाबू कैसे हुए? हथियार उठाने की वजह क्यों नहीं दूर की जा रही? सवाल ढेर सारे हैं, जवाब केवल सन्नाटा. समस्याएं कई हैं, उपाय बस सियासत. क्या लालगढ़ में ख़ून की नदियां बहा कर ही अमन क़ायम किया जा सकता है? हालांकि सौ फीसदी सच यही है कि वहां अमन तभी बहाल होगा, जब सरकार वहां के आदिवासियों का विश्वास जीतेगी. भूखों को नहीं, भूख को मारेगी.

बिमल राय

लम्हों ने ख़ता की थी, सदियों ने सज़ा पाई. कुछ ऐसा ही हो रहा है, बंगाल के पुलिस प्रशासन के साथ. घनघोर अंधेरे में लिपटे लालगढ़ के वर्तमान को समझने के लिए कुछ देर हमें पीछे झांकना होगा. उसके बाद ही आगे की कड़ियों का तारतम्य समझ में आ सकेगा. दो नवंबर 2008 को सालबनी में जिंदल के प्रस्तावित स्टील प्लांट की जगह देखने जा रहे मुख्यमंत्री बुद्धदेव भट्टाचार्य और तत्कालीन इस्पात मंत्री रामविलास पासवान के क़ाफ़िले को बारूदी सुरंग से उड़ाने की साज़िश का पर्दाफाश करने का ज़िम्मा क्या मिला, बंगाल पुलिस ने इसे निरीह आदिवासियों पर ज़ुल्म ढाने का लाइसेंस ही समझ लिया. छोटो पेलिया, बोड़ो पेलिया, भासबेर और काटा पहाड़ी इलाक़ों में पुलिस ने बेरहमी की जो कहानी लिखी, उसे भुला पाना ग़रीबी और ज़िल्लत की ज़िंदगी जी रहे आदिवासियों के लिए काफी मुश्किल है. इस तरह वे भी ख़ून के बदले ख़ून की जंग के साथ हो गए हैं.

विस्फोट के दो दिन बाद पांच नवंबर 2008 को छोटो पेलिया में पुलिस ने एक महिला के घर आए अतिथि को माओवादी व सालबनी विस्फोट कांड का मुख्य अभियुक्त बताकर पकड़ लिया. प्रतिरोध करने पर पुलिस बंदूक की बट से उसके माथे पर चोट करती है. उसकी एक आंख सदा के लिए चली गई. एक और बानगी. उसी रात, ठीक उसी गांव में पुलिस 8 वीं से 10 वीं कक्षा में पढ़ने वाले चार बच्चों को पकड़ लेती है. थाने में पता चलता है कि एक बच्चे का पिता सेना में है, तो उसको रिहा किया जाता है. काटा पहाड़ी स्कूल के हेडमास्टर को माओवादियों को संरक्षण देने के जुर्म में पकड़ा जाता है. 1998 से पहले लालगढ़ ऐसा नहीं था. ग़रीबी थी, पिछड़ापन था, पर बारूद की गंध नहीं थी. बूटों की खड़खड़ाहट नहीं थी, बम बरसाने की मुद्रा में गुर्रा रहे हेलीकॉप्टरों की निगरानी नहीं थी.

पूछा जा सकता है, सोचा जा सकता है कि आज लालगढ़ के हालात के ज़िम्मेदार कौन लोग हैं? पुलिस का कहर जारी रहा, बच्चों पर, बूढ़ों पर, महिलाओं पर. एक पुराना घिसा-पिटा तरीक़ा-आम लोगों में आतंक कायम करो और सरकार की साख़ बहाल करो. इससे जनाक्रोश जितना उबल सकता था, उससे कहीं ज़्यादा उबला. आदिवासियों ने पुलिस संघर्ष विरोधी *जनसाधारणेर कमेटी* बनाई. इस तरह पुलिस और उसके साथ मिलकर काम करते आ रहे माकपा काडरों के लिए गाली की तरह इस्तेमाल किए जाने वाले शब्द *हरमाद वाहिनी* के ख़िलाफ़ जंग का ऐलान हो गया. रास्ते काटकर बंगाल सरकार की पुलिस और अधिकारियों का प्रवेश निषेध कर दिया गया. फिर भी अमन का एक रास्ता बचा था. संघर्ष समिति ने लोकसभा चुनावों से पहले कहा था कि अगर पुलिस जनता पर किए गए अत्याचारों के लिए माफी मांग लेती है तो वे अपना आंदोलन ख़त्म कर देंगे. 33 साल से राज कर रही वाम सरकार के मुखिया ने नंदीग्राम के अत्याचार के लिए तो माफी मांग ली, पर लालगढ़ के पुलिसिया जुल्म के लिए माफी मांगने में उसे शायद शर्म आ गई. नतीजा यह हुआ कि पश्चिम मिदनापुर के कम से कम दर्जनों बूथों पर मतदान का बहिष्कार हुआ.

आज लालगढ़ जंग का मैदान बन गया है. एक ऐसी जंग, जिसके उस पार भी अपने ही परिजन हैं. उसी सोनार बांग्ला के परिजन, जिसने 33 साल से एक ही पार्टी की सरकार को बहाल रखा है. पुलिस की 18 कंपनियों के कुल 1800 जवान अभियान पर हैं. उड़ीसा के कोरापुट में नक्सलियों से निपटने के लिए बनाई गई कोबरा फोर्स के जवानों के साथ-साथ अभियान की अगुआई कर रहे सीआरपीएफ के जवान भी हैं. इस विशाल सरकारी सेना के मुक़ाबले के लिए लालगढ़ में बंगाल के साथ-साथ उड़ीसा और झारखंड से आए कम से कम एक हज़ार माओवादियों का मोर्चा भी है. यह एक संयोग ही है कि खेजुरी में तृणमूल कार्यकर्ताओं ने जब माकपा के एक क्षेत्रीय कार्यालय पर क़ब्ज़ा किया, ठीक उसी समय लालगढ़ के पास रविवार को धरमपुर में हुई गोलीबारी में आदिवासियों की संघर्ष समिति का एक सदस्य और तीन माकपा काडर मारे गए-असित सामंत, प्रवीर महतो और नारू सामंत. 13 जून को छत्रधर महतो और प्रशासन के बीच बैठक हुई, जिसमें रास्ते पर लगे अवरोध हटाने पर विचार हुआ. उसी दिन शाम को माओवादी नेता शंकर टुडू की हत्या की गई. एक घंटे के भीतर ही *जन संघर्ष समिति* की जनता ने मोहुलबनी से छह माकपा कैडरों को अगवा कर लिया. लालगढ़ के पास के वृंदावनपुर, जिरापाड़ा व सालबनी में भी हिंसक झड़पें शुरू हो गईं. माकपा के बीनपुर माकपा जोनल कमेटी के सचिव अनुज पांडे का आरोप है कि उनके चार कार्यकर्ता मारे गए हैं और कई लापता हैं. 17 जून को बीनपुर में संघर्ष समिति के लोगों ने माकपा नेता चंडी करण का घर जला दिया.

और अब तो लड़ाई नहीं हो रही, बल्कि युद्ध चल रहा है. 19 जून को दिल्ली में गृह मंत्री पी चिदंबरम ने कहा, लालगढ़ को माओवादियों से मुक्त कराने के लिए पर्याप्त सुरक्षा बल मुहैया कराए गए हैं. गृह मंत्री के मुताबिक कोई भी सरकार अपने ही लोगों से युद्ध नहीं कर सकती. लालगढ़ की जंग के साथ-साथ केंद्र और राज्य के राजनीतिक समीकरणों का भी हल्का टकराव होता दिख रहा है. बदनामी का डर है और बंगाल में होने वाले विधानसभा चुनावों पर भी नज़र रखने की मजबूरी है. गृहमंत्री ने साफ कहा कि केंद्रीय बलों की भूमिका राज्य पुलिस की मदद करना है, पर इसमें कोई शक़ ही नहीं कि राज्य पुलिस नक्सलियों से निपटने में पूरी तरह दक्ष नहीं है. उसके पास न ताक़त है और न ही रणनीति. बहुत पहले से यह आरोप लगता रहा है कि पुलिस का मुख्य कार्य

(शेष पृष्ठ 2 पर)

लालगढ़ बनाम वामगढ़

कई दिनों के बाद पुलिस बल के लिए सांत्वना की बात यही है कि लालगढ़ थाने में पिछले साल नवंबर से ताला बंद कर छिपे पुलिस कर्मियों ने सूरज देखा. सुरक्षा बल भी झिटका जंगल से बचते-बचाते दूसरे रास्ते से लालगढ़ थाने तक पहुंचे. इसके बाद रामगढ़ और दूसरी कई छोटी-मोटी पुलिस चौकियों को मुक्त कराने की योजना है. उसके बाद ही अंतिम कार्रवाई की प्रशासन की योजना है.पिंग्वनी में एक मुठभेड़ के बाद छह माओवादियों को मार गिराने का दावा किया जाता है, पर माओवादी उन्हें आम जनता बता रहे हैं. कामयाबी पर प्रशासन अपनी पीठ ठोंक रहा है. हालांकि प्रशासन की खिल्ली उड़ाते हुए आदिवासी संघर्ष समिति के मुखिया छत्रधर महतो *चौथी दुनिया* को फोन पर बताते हैं कि अभी उनको जंगल में तो आने दें, तब असल परीक्षा होगी. मतलब कि झिटका जंगल में माओवादियों ने चक्रव्यूह रच रखा है. जवान उधर ही बढ़ रहे हैं. एक बारूदी सुरंग के विस्फोट से छह जवान घायल हो चुके हैं. आतंकित होकर भाग रहे लोगों पर पुलिस गोली चलाती है. एक तृणमूलकर्मी की मौत से लड़ाई का एक राजनीतिक मोर्चा कोलकाता में खुल गया है. मुख्यमंत्री ने अपने बयान से बर्रे के छत्ते में हाथ डाल दिया है. वह कहते हैं कि तृणमूल की माओवादियों से सांठगांठ है. ममता मुख्यमंत्री को ग़लतबयानी के लिए बर्खास्त करने की मांग कर रही हैं. वह 48 घंटे का अल्टीमेटम देते हुए आर-पार की लड़ाई की बात करती हैं. बुद्धदेव भट्टाचार्य ने यह भी कहा कि छत्रधर महतो तृणमूल का ही सदस्य है, ममता का इस पर जवाब है कि महतो को बहुत पहले पार्टी से निकाल दिया गया है. गृहमंत्री पी चिदंबरम की सलाह है कि माओवादियों पर पाबंदी लगा दी जाए. सीएम इस पर विचार करने की बात कर रहे हैं. वह हालांकि जानते हैं कि यह मसले का हल नहीं है. अभी तो जंगल की बस्तियों में क़ानून का शासन बहाल करने की ज़रूरत है. साहस के साथ, संयम के साथ, ताकि नंदीग्राम की भूल दोहराई न जा सके, इसका ख्याल सरकार रख रही है. कोलकाता में अतिवामपंथी भी झंडे-बैनर लेकर उतर चुके हैं. यानी जंग दो मोर्चों पर जारी है. लड़ाई कठिन है. इस पिछड़े और उजाड़ इलाके में अचानक आई भीड़ के लिए तैयारी अधूरी रह गई थी. सुरक्षा बलों के लिए खाना कम पड़ रहा था. बिस्किट और चनाचूर की दुकानें खुलवाकर जवान पेट भर रहे थे. ख़बर फैलते ही सरकार ने इस मोर्चे को भी मज़बूत किया है. मुंबई में आतंकी हमलों की तर्ज पर टीआरपी के लिए कवरेज कर रही मीडिया की फौज भी तैनात है. मनोबल तोड़ने के लिए झूठे दावों की कोई गुंजाइश नहीं है. जंगल से माओवादी हटे नहीं हैं. वे फोन पर बात कर ही रहे हैं, लोकेशन पता कर लीजिए. हर वारदात की दोतरफा ब्रीफिंग हो रही है. और इस बीच शुरू होने वाली है घनघोर मानसूनी बारिश. ज़ाहिर है, लालगढ़ की जंग महीनों तक चल सकती है.

> **अभी तो जंगल की बस्तियों में क़ानून का शासन बहाल करने की ज़रूरत है. साहस के साथ, संयम के साथ. ताकि नंदीग्राम की भूल दोहराई न जा सके. इसका ख़्याल सरकार रख रही है. लड़ाई कठिन है.**

फोटो-*पीटीआई*

दिल्ली का बाबू

दिलीप चेरियन

मंत्रालय में मरम्मत

नए गृह सचिव जी.के. पिल्लई को भले ही भारत के सबसे दबाव वाले मंत्रालय के लिए चयनित किया गया हो, लेकिन गृहमंत्री पी. चिदंबरम सिर्फ़ बड़े पदों पर बैठने वालों से ही काम नहीं चाहते. मंत्रालय के बाबू सिर्फ़ उनके तय किए लंबे और नए कार्यघंटे से ही परेशान नहीं हैं, बल्कि लगता है कि पीसी पूरे मंत्रालय को दुरुस्त करने में जुटे हुए हैं.

उन्होंने मंत्रालय के सभी बाबुओं की समीक्षा की है और उनकी योजना ग़ैर-ज़रूरी लोगों को बाहर का रास्ता दिखाकर मंत्रालय को चुस्त करने की है. साथ ही समयबद्धता और उपस्थिति पर भी सख्ती दिखाते हुए, मंत्रालय में बायोमैट्रिक आधारित उपस्थिति कंट्रोल सिस्टम लगाने की सोच रहे हैं.

उनके नए निजी सचिव की नियुक्ति भी होनी है, क्योंकि उनसे पहले मंत्री रहे शिवराज पाटिल के निजी सचिव राजीव मित्तल की छुट्टी हो चुकी है. साथ ही कई

व्यवस्थागत बदलाव भी होने हैं. सूत्रों के अनुसार, मंत्रालय में आंतरिक सुरक्षा और पुलिस के लिए अब अलग विभाग होंगे और महत्वपूर्ण व्यक्तियों की सुरक्षा आंतरिक सुरक्षा विभाग के तहत होगी.

ज़ाहिर है, गृह मंत्रालय के बाबुओं के पास फ़िलहाल करने और सोचने को बहुत कुछ है.

राज़ की बात

ठीक-ठीक तो पता नहीं, लेकिन जिस तरह से आर्थिक मामलों से जुड़े एक मंत्रालय की ख़ास महिला अधिकारी आजकल अपने पुराने काम पर लौटने के लिए उत्सुकता दिखा रही है, उससे तो यही लगता है कि दाल में कुछ काला है. इस अधिकारी ने पिछले दिनों लंदन की कई यात्राएं की है, लेकिन शायद ही इनमें से किसी को काम से जुड़ा हुआ कहा जा सकता है. इससे से बड़ी बात यह कि इन यात्राओं का विषय उन महत्वपूर्ण बातों से जुड़ा हुआ है जो नए कैबिनेट के गठन से पहली हुईं थीं. इन बातों के दौरान पिछली सरकार के बाबुओं और मंत्रियों की भूलों पर चर्चा हुई थी.

हालांकि वापसी की इस इच्छा के पीछे मंत्रालय के दो सर्वोच्च बाबुओं की छुट्टी वजह है या फिर आराम (भले ही थोड़े समय के लिए) की चाह, कोई नहीं कह सकता. हालांकि यह अजीब लेकिन समझने लायक बात है कि जहां उनके पुराने बॉस पहुंचे हैं, वहां उनके लायक कोई

ख़ाली जगह नहीं है. वैसे, उनका पुराना ठिकाना यानी दिल्ली सरकार भी अभी वापसी पर कुछ तय नहीं कर पा रही है. हालांकि अगर वह राज़ की बात सामने आ जाए तो शायद उनकी वापसी के लिए रास्ते खुल जाएंगे. फिलहाल, राज़ को राज़ ही रहने दें.

साउथ ब्लॉक

अंजुम ए ज़ैदी

योजना आयोग को मिलेगा नया निदेशक

रूपिंदर सिंह (महाराष्ट्र काडर) के इस्पात मंत्री के निजी सचिव के रूप में कार्यभार ग्रहण करने के बाद से ही योजना आयोग के निदेशक का पद ख़ाली है. सूत्रों के मुताबिक रीना साहा, जो 1994 के इंडियन ऑडिट एंड एकाउंट सर्विस की अधिकारी हैं, योजना आयोग के निदेशक का पद ग्रहण कर सकती हैं. ग़ौरतलब है कि योजना आयोग के निदेशक का पद 22 जुलाई 2008 से ही ख़ाली है.

बने रहेंगे अमिताभ

अमिताभ वर्मा (बिहार काडर, 1982 बैच) फ़िलहाल वित्त मंत्रालय में बैंकिंग ऑपरेशन के संयुक्त सचिव हैं. उन्हें फिर से तीन महीने का सेवाविस्तार दिया गया है. ग़ौरतलब है कि पहले भी उनकी केंद्रीय प्रतिनियुक्ति को तीन महीने के लिए 19 जून 2009 तक बढ़ा दिया गया था. यह विस्तार उस समय हुआ, जब सरकार बजट प्रस्तुत करने की तैयारी में है. यह स्पष्ट है इस समय उनका योगदान महत्वपूर्ण होगा.

फाइल अभी तक नहीं पहुंची

ब्रह्म दत्त (कर्नाटक काडर, 1973 बैच), एन गोकुलराम (कर्नाटक काडर, 1974 बैच) और बीएस मीणा (महाराष्ट्र काडर, 1974 बैच) के नाम सरकार में नए सचिवों के तौर पर नियुक्ति के लिए तय हो गए थे. लेकिन आदेश से संबंधित फाइलें अभी तक नहीं पहुंची हैं. देरी के कारणों का पता नहीं चल सका है. प्रधानमंत्री ने सौ दिन का जो ब्लूप्रिंट तैयार किया, उसके संदर्भ में यह आश्चर्यजनक है.

लालगढ़ की लाल लपटें

पृष्ठ एक का शेष

सत्ताधारी आकाओं की राजनीतिक ताक़त बढ़ाने में मदद करने के लिए आम जनता पर जुल्म करना है, जंग जीतना नहीं. पर यह हक़ीक़त है कि जंग हो रही है. हेलीकॉप्टर लाशों व घायलों को ढोने के लिए तैनात हैं और जनता को आत्मसमर्पण की प्रेरणा देने वाले पर्चे भी गिराए जा रहे हैं. 18 जून को लालगढ़ से 17 किलोमीटर दूर पीराकाटा में अग्रिम पंक्ति में जिला पुलिस की 100 और सीआरपीएफ के तीन सौ जवान तैनात किए गए. वहां आदिवासी संघर्ष समिति की महिलाओं व बच्चों की मानव दीवार ने रास्ता रोका. पुलिस ने पहले तो लाउडस्पीकर पर घोषणा कर उन्हें हटने के लिए कहा और बाद में आंसू गैस छोड़ी. हल्का लाठी-चार्ज किया. वहां के क़रीब के एक गांव में जैसे ही गोलियों की आवाज़ आई, अग्रिम मोर्चे पर सीआरपीफ आ गई. यानी युद्ध क्षेत्र में पूरा तालमेल है. अभियान के पहले दिन सुरक्षा बलों ने तीन मानव दीवारें तोड़ीं. 19 जून को माओवादियों ने जैसे जाल बिछाकर सुरक्षाबलों को जीत्कार जंगल के क़रीब भीमपुर बुला लिया.

माओवादियों व जन संघर्ष समिति ने चार स्तरों वाली दीवार बनाई है. सबसे पहले सुरक्षा बलों को जगह-जगह से काटे और खोदे गए रास्तों को पाटना है और पेड़ काटकर बनाए गए अवरोधों को हटाना पड़ रहा है. उसके बाद बच्चों व महिलाओं की दीवार है, तीसरे मोर्चे पर पारंपरिक हथियारों जैसे, तीर-धनुष से लैस आदिवासी हैं और आख़िरी मोर्चे पर जंगल के पूरे रास्ते में बारूदी सुरंग बिछाकर एके-47 और 57 से लैस माओवादी काडर हैं. अभियान के दूसरे दिन 19 जून को संयुक्त बलों को काफी मशक़्क़त करनी पड़ी, क्योंकि झाड़ग्राम से लालगढ़ जाने वाली सड़क को कई जगह काट दिया गया था और एक पुल भी तोड़ दिया गया था. बंदूक व बारूद के साथ आगे बढ़ रहे बलों को क़दम-क़दम पर संकट का सामना करना पड़ रहा है.

लालगढ़ के संकट को लेकर राजनीति भी चलती रही है. ज़ाहिर है, अब तक किसी तरह की कामयाबी हासिल नहीं हुई है. लोकसभा चुनावों के बाद के बदले समीकरणों ने समस्या के समाधान के लिए विपक्ष, ख़ासकर ममता बनर्जी को उलझन में डाल दिया है. रेलवे बजट तैयार करने में उलझे रहने का कारण बताकर ममता माओवादियों के ख़िलाफ़ अभी तक खुल कर बयान नहीं दे पा रही हैं. माओवादी नेता विकास ने तो एक बांग्ला चैनल को दिए गए साक्षात्कार में साफ कहा कि नंदीग्राम में उनके संगठन ने तृणमूल के साथ मिल कर लड़ाई लड़ा. हालांकि विकास यह भी मानते हैं कि माकपा और तृणमूल एक ही सिक्के के दो पहलू हैं.

केंद्र भी कम चिंतित नहीं है. बांकुड़ा, पुरुलिया और पश्चिमी मिदनापुर जिलों में माओवादियों के बढ़ते प्रभाव पर पिछले 12 जून को मनमोहन सिंह, प्रणव मुखर्जी व ममता बनर्जी के बीच बैठक भी हुई. बैठक में राज्य सरकार के कुछ बड़े अफसर भी थे और उनका कहना है कि माओवादी झारखंड से आते हैं और वारदात कर वापस लौट जाते हैं. यह बात एक हद तक सही भी हो सकती है, मगर यह हक़ीक़त साफ दिखती है कि माओवादियों को पुलिस अत्याचार के ख़िलाफ़ बनी जनसंघर्ष समिति का खुलेआम और अप्रत्यक्ष रूप से तृणमूल का समर्थन मिल रहा है.

देश के नक्सल प्रभावित दूसरे इलाक़ों की तरह लालगढ़ की आग भी पिछड़ेपन और सरकारी सुविधाओं की असंतुलित बंटवारे की चिंगारी से लगी है. लोगों पर माओवादियों को पनाह देने का आरोप है, इसलिए वे सारी सुविधाओं से वंचित हैं. आदिवासी संघर्ष समिति के एक नेता के मुताबिक, लालगढ़ थाने के आधुनिकीकरण के लिए करोड़ों का बजट है, पर थाने के दो किलोमीटर के दायरे में इंदिरा आवास योजना के तहत जो मकान बनाए गए हैं, वे सभी ग़रीबी रेखा से ऊपर रह रहे उन्हीं लोगों के हैं, जो माकपा संचालित पंचायत सदस्यों के सगे-संबंधियों के हैं. गांवों में बिजली नहीं है, स्कूल हैं, पर शिक्षक नहीं. नहरें दिखावे के लिए बना दी गई हैं, पर पानी नहीं आता. ग़रीबी, बेरोज़गारी और भूख के कारण पूरी नई पीढ़ी तेज़ी से संघर्ष समिति की सदस्यता का रूट अपनाते हुए माओवादियों के साथ हो जा रही है.

फोटो-*पीटीआई*

2005 में केंद्र सरकार का निर्देश आया कि राज्य सरकार के सारे विभाग अपने कोष का 28 फीसदी हिस्सा पिछड़े क्षेत्रों पर ख़र्च करें. हालांकि सरकार के पिछड़ा वर्ग मंत्री योगेश बर्मन भी मानते हैं कि हर साल उनके विभाग को 300 करोड़ की राशि मिलती है, पर वन विभाग को छोड़कर किसी भी विभाग ने 28 फीसदी राशि ख़र्च नहीं की है. बंगाल सरकार के बजट प्रावधानों में पिछले चार सालों में स्वास्थ्य और खाद्य विभाग के लिए 675 करोड़ की राशि आवंटित की गई, पर इसका अगर एक तिहाई हिस्सा भी पश्चिम मिदनापुर और बांकुड़ा के आदिवासी बहुल इलाक़ों में ख़र्च किया गया होता, तो तस्वीर कुछ अलग ही होती.

कोलकाता के इंडियन स्टैटिकल इंस्टीट्यूट के अर्थशास्त्र के प्रोफेसर पी के मोहंती का भी मानना है कि पिछड़ेपन के कारण ही आदिवासियों का राज्य सरकार से विश्वास उठता जा रहा है. वन संसाधनों के दोहन के संबंध में विभाग की ओर से लगाई गई कड़ी पाबंदियों ने उनके जले पर नमक छिड़का है.

इंस्टीट्यूट के आंकड़े बताते हैं कि अविभाजित मिदनापुर जिले में कम से कम 18 लाख की आबादी या तो ग़रीबी रेखा के बस ऊपर है या उसके नीचे रह रही है. बांकुड़ा में ग्रामीण ग़रीबी की दर 28.5 फीसदी और पुरुलिया में 31 फीसदी है. बंगाल की एक करोड़ 70 लाख की आबादी या कुल ग्रामीण आबादी का 28 प्रतिशत हिस्सा ग़रीब है. हाल ही में एक पत्रिका को दिए गए साक्षात्कार में बंगाल के वाणिज्य व उद्योग मंत्री निरुपम सेन ने भी स्वीकार किया कि राज्य के 50 फीसदी लोग पिछड़े हैं. उत्तर बंगाल के आदिवासी इलाक़ों में भी हालात कुछ बेहतर नहीं हैं. उड़ीसा, झारखंड और छत्तीसगढ़ की सीमाओं के क़रीब होने के कारण ऊपर के बताए गए तीन जिलों में माओवादियों ने जनसमर्थन के बूते अपना गढ़ मज़बूत कर लिया है.

हालांकि उपेक्षा का परिणाम ही है कि उत्तर बंगाल में आदिवासी विकास परिषद का गठन हुआ है. कामतापुर आंदोलन और गोरखा जन मुक्ति मोरचे के प्रति आदिवासियों की सहानुभूति के पीछे भी यही कारण हैं. पुलिस अत्याचार के ख़िलाफ़ बनी संघर्ष समिति के मुखिया छत्रधर महतो ने जो 13 सूत्री मांगें रखी हैं, उसमें ज़्यादातर मांगें विकास से संबंधित ही हैं. आदिवासियों के साथ न्याय करने, नरेगा के तहत साल में 100 दिन काम देने, बुनियादी स्वास्थ्य सेवाएं, बीपीएल कार्ड जारी करने व सरकारी फंड की बंदरबांट बंद करने की मांगों को मान लेना क्या ज़मीनी और हवाई मार्ग के ज़रिए जंग छेड़कर अपनी ही ज़मीन के एक हिस्से को तबाह करने की तुलना में सस्ता सौदा नहीं है?

छत्रधर महतो के साथ माओवादी नेताओं ने शर्त रखी है कि पहले सुरक्षा बलों की कार्रवाई रोकी जाए, तभी बातचीत का रास्ता खुल सकता है. इधर, सरकार अपना संपूर्ण प्रभुत्व बहाल करने के लिए हर हालत में इस जंग को जीतना चाहती है. वह कहती है कि माओवादी पहले आत्मसमर्पण करें, फिर बातचीत का रास्ता खुलेगा. पर सवाल तो यह है कि माओवादी हथियार डालने से पहले झारखंड और उड़ीसा क्यों नहीं लौट जाएंगे, जहां वे फ़िलहाल ज़्यादा सुरक्षित महसूस करेंगे. सवाल है कि क्या वहां ख़ून की नदियां बहाकर ही अमन क़ायम किया जा सकता है? हालांकि सौ फीसदी सच यही है कि वहां अमन तभी बहाल होगा, जब सरकार लालगढ़ के आदिवासियों का विश्वास जीतेगी. सरकार को उन कारणों को दूर करना होगा, जो आदिवासियों को माओवादियों से जोड़ते हैं. उसे यह रिश्ता तोड़ना ही होगा. अन्यथा सीमा पार से माओवादी आते रहेंगे और लालगढ़ में ख़ून बहाकर बुझी हुई चिंगारी को सुलगाते रहेंगे.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

चौथी दुनिया
हिन्दी का पहला साप्ताहिक अख़बार

आर एन आई रजि.न.45843/86

वर्ष 23 अंक 16, 29 जून-5 जुलाई 2009

प्रधान संपादक
संतोष भारतीय

मैसर्स अंकुश पब्लिकेशंस प्राइवेट लिमिटेड के लिए मुद्रक व प्रकाशक रामपाल सिंह भदौरिया द्वारा जागरण प्रकाशन लिमिटेड डी 210-211 सेक्टर 63, नोएडा उत्तर प्रदेश से मुद्रित एवं के-2, गैनन, चौधरी बिल्डिंग, कनाट प्लेस, नई दिल्ली 110001 से प्रकाशित

संपादकीय कार्यालय
के-2, गैनन
चौधरी बिल्डिंग
कनाट प्लेस
नई दिल्ली 110001

फोन न.
संपादकीय +91 011 47149999
विज्ञापन +91 011 47149916
प्रसार +91 011 47149905
फैक्स न. +91 011 47149906

समस्त कानूनी विवादों का क्षेत्राधिकार दिल्ली न्यायालयों के अधीन होगा.

मनीष कुमार

■ भाजपा की राष्ट्रीय कार्यकारिणी का संदेश

हम नहीं सुधरेंगे

भारतीय जनता पार्टी की राष्ट्रीय कार्यकारिणी की बैठक हर मायने में विफल रही. इस बैठक के बाद भाजपा पहले से कहीं ज़्यादा भ्रमित नज़र आ रही है. नेतृत्व और विचारधारा को लेकर, संगठन को मज़बूत करने की बात पर, युवाओं को पार्टी में जगह देने के मसले पर, संघ के साथ संबंध के मुद्दे पर और हिंदुत्व के रूप और मायने पर भाजपा में दिशाहीनता की स्थिति है. हार की वजहों को ढूंढने निकली भाजपा का हाल यह रहा कि इस बैठक के ज़रिए पार्टी की अंदरूनी कलह सबके सामने आ गई. राष्ट्रीय कार्यकारिणी में नेता एक-दूसरे पर निशाना साधते नज़र आए. पार्टी के अंदर मौजूद सारे गुट सबके सामने आ गए. पार्टी के शीर्ष नेताओं ने अपने बयानों से कार्यकर्ताओं को निराश किया और बची-खुची कसर दूसरी पंक्ति के नेताओं ने आपस में लड़कर पूरी कर दी. भाजपा की राष्ट्रीय कार्यकारिणी का हाल किसी पिटे हुए बॉलीवुड फिल्म की तरह रहा. इसकी पृष्ठभूमि शानदार थी, ट्रेलर बनाने में भी ख़ासी मेहनत की गई, ज़ोरदार प्रचार भी किया गया, लेकिन भाजपा की इस फिल्म में क्लाइमेक्स ही नहीं था-बहुत शोर सुनते थे, पहलू में दिल का, जो चीरा तो क़तरा-ए-ख़ूं भी न निकला.

दो दिनों की सिरफुटव्वल का कोई नतीजा कुछ भी नहीं निकला. लालकृष्ण आडवाणी ने इस राष्ट्रीय कार्यकारिणी में पार्टी को फिर से उसी दलदल में धकेल दिया जिसकी वजह से पार्टी गर्त में गई है. आडवाणी ने हार के लिए ज़िम्मेदार लोगों का बचाव किया. प्रेस में पार्टी के अनधिकृत रूप से रणनीतिकार बनकर पार्टी के ही ख़िलाफ़ लिखने वाले अपने चहेते सलाहकारों को बचाया. सबसे हैरान करने वाली बात यह रही कि आडवाणी संगठन को बचाने के लिए देश भर की यात्रा पर निकलेंगे, लेकिन उन्हें कौन बताए कि जब कार्यकर्ता ही पार्टी से रूठ जाएंगे तो आडवाणी की यात्रा भी पिछली यात्रा की तरह बेमानी ही हो जाएगी.

आडवाणी का हठ

लालकृष्ण आडवाणी के हठ का भी जबाव नहीं. हार के बाद उन्होंने स्वेच्छा से संन्यास की घोषणा कर दी थी. बाद में अपने सलाहकारों और उनके नाम पर राजनीति करने वाले नेताओं के कहने पर वह लोकसभा में न सिर्फ़ नेता प्रतिपक्ष बने, बल्कि अब पार्टी को फिर से खड़ा करने के लिए देश भर की यात्रा का ऐलान भी कर दिया. आडवाणी ने अपने गुट के नेताओं का पुरज़ोर बचाव किया. भाजपा के चुनाव मैनेजरों के बचाव में उन्होंने एक से एक दलीलें दीं. कुछ सच कुछ झूठ. आडवाणी ने भाजपा की सचिन तेंदुलकर से तुलना की. यह अजीबोगरीब है. उन्होंने कहा कि सचिन भी तो 99 पर आउट हो जाते हैं. यह तुलना ग़लत है, क्योंकि सचिन क्रिकेट के सबसे महान बल्लेबाज हैं. क्या आडवाणी ख़ुद को या भाजपा को राजनीति का सचिन मानते हैं? अगर भाजपा की तुलना किसी क्रिकेटर से की जाए तो वह विश्वकप जीतने के बाद वेस्टइंडीज सीरीज में मोहिंदर अमरनाथ से की जानी चाहिए, जिन्होंने इस सीरीज में शून्य पर आउट होने का विश्व रिकार्ड बनाया था. आडवाणी जी को समझना चाहिए कि भाजपा यह चुनाव एक रन से नहीं हारी है, वह दूसरी बार जनता द्वारा नकार दी गई पार्टी बन चुकी है. आडवाणी का पूरा भाषण पार्टी के रणनीतिकारों को बचाने की कवायद रही. उन्होंने कुछ नेताओं की आपसी छींटाकशी पर भी कड़ी आपत्ति जताई. लेकिन चुनाव के दौरान जब जेटली ने राजनाथ सिंह के ख़िलाफ़ मोर्चा खोला था, तब इन्हीं आडवाणी जी ने चुप्पी साध ली थी. आडवाणी इस राष्ट्रीय कार्यकारिणी में पार्टी को एकजुट रखने में न केवल असफल रहे, बल्कि ख़ुद गुटबाज़ी का हिस्सा बन गए. आडवाणी ने युवाओं के मसले पर कहा कि पार्टी को तुरंत एक ऐसी व्यवस्था विकसित करनी पड़ेगी, जिससे हर स्तर पर पर युवाओं को तरजीह मिले. ज़िम्मेदार पदों पर बैठे नेता प्रतिभाशाली और कर्मठ युवा कार्यकर्ताओं को नज़रअंदाज़ करते हैं. यह सच है कि भाजपा में युवाओं के लिए सारे दरवाजे बंद हैं. लेकिन राष्ट्रीय कार्यकारिणी में इसका पता लगाना चाहिए था कि वे कौन नेता हैं, जो युवाओं को पार्टी के अंदर नहीं आने दे रहे हैं. अगर आडवाणी जानबूझ कर अनजान बन रहे हैं तो कोई बात ही नहीं. लेकिन सच्चाई यह है कि पार्टी में युवाओं का रास्ता रोकने वाले वही नेता हैं जो आडवाणी जी के क़रीब माने जाते हैं. अगर आडवाणी जी ने यही सवाल चुनाव से पहले उठाया होता, तो वेबसाइट बनाने की ज़रूरत नहीं पड़ती. युवाओं के लिए पार्टी के दरवाज़े खुल जाते. हैरानी की बात यह है कि भारतीय जनता युवा मोर्चा के अध्यक्ष को जब आडवाणी जी के सलाहकारों ने टिकट के क़ाबिल नहीं समझा तो दूसरे छोटे युवा नेताओं की क्या बिसात.

भाजपा के लोग मानें या न मानें, लेकिन आडवाणी जी के बयानों से यही लगता है कि हार के बाद वह राहुल गांधी की रणनीति को समझने की कोशिश कर रहे हैं और उनका अनुसरण करना चाह रहे हैं. दो मुख्य बातें ग़ौर करने लायक हैं. पहला तो यह कि उन्होंने राहुल गांधी की तरह देश भर का दौरा कर पार्टी संगठन को मज़बूत करने का ऐलान किया है. दूसरा यह कि वह राहुल गांधी की तरह भाजपा में भी युवाओं की एक फौज तैयार करना चाहते हैं. लेकिन समस्या यह है कि उन्हें इसके लिए उन्हें अपने ही सलाहकारों और नज़दीकी नेताओं को पहले किनारे करना होगा.

नाख़ून काट कर शहीद बनने की कोशिश

भाजपा अध्यक्ष राजनाथ सिंह ने राष्ट्रीय कार्यकारिणी में अच्छी चाल चली. लोकसभा चुनाव में हार की जवाबदेही से उन्होंने स्वयं को बचाने की कोशिश की. विजय का श्रेय और पराजय का उत्तरदायित्व दोनों सामूहिक होता है, इसका वास्ता देकर राजनाथ सिंह ने उन सारे लोगों को क्लीन चिट दे दी, जो हार के लिए ज़िम्मेदार थे, जो कार्यकर्ताओं की नाराज़गी की वजह थे. जो लोग पार्टी को एयरकंडीशन कमरे से चलाना चाहते हैं, उन्हें खुली छूट दे दी. पार्टी कार्यकर्ताओं को यह साफ-साफ संदेश चला गया कि चाहे कुछ भी हो जाए, पार्टी अपना तरीक़ा बदलने वाली नहीं है. राजनाथ सिंह ने यह भी कहा कि अगर कोई किसी व्यक्ति को ही इसका ज़िम्मेदार ठहराना चाहता है, तो अध्यक्ष होने के नाते वह इसकी ज़िम्मेदारी लेने को तैयार हैं. राजनीति में ऐसा बहुत बार देखा गया है कि लोग नाख़ून कटा कर शहीद बनना चाहते हैं. असलियत यह है कि इस राष्ट्रीय कार्यकारिणी के बहाने राजनाथ सिंह ख़ुद को पार्टी में स्थापित करना चाहते हैं, पार्टी की इस नाजुक घड़ी में ख़ुद को भी एक मोहरा बनाना चाहते हैं. वह इस बार लोकसभा में चुन कर आए हैं. पार्टी के अध्यक्ष भी हैं. उनके बयान से तो यही लगा कि आने वाले दिनों में उन्हें दो में से एक कुर्सी चाहिए. वह पार्टी का अध्यक्ष बने रहना चाहते हैं या फिर आडवाणी के बाद वह लोकसभा में नेता प्रतिपक्ष बनना चाहते हैं. राजनाथ सिंह की समस्या यह है कि कोई उनका नाम ही नहीं ले रहा है. यह बात जगज़ाहिर है कि जब चुनाव की तैयारी हो रही थी, चुनाव प्रचार की रणनीति बन रही थी तब आडवाणी और जेटली की टीम ने उनको कोरग्रुप से बाहर ही रखा था. सुधांशु मित्तल के मामले में तो राजनाथ सिंह से अरुण जेटली भिड़ ही गए. अरुण जेटली ने यह सबित कर दिया था कि चुनाव अभियान में उनकी हैसियत पार्टी के अध्यक्ष से कहीं ज़्यादा है. इसके बावजूद, जब राजनाथ सिंह हार की जवाबदेही ले ही रहे हैं तो उन्हें जवाब भी देना होगा. उन्हें यह भी बताना चाहिए कि क्यों पूरे चुनाव प्रचार के दौरान अटल बिहारी वाजपेयी को दरकिनार किया गया? भाजपा के पोस्टरों से अटल जी की तस्वीर हटाने का फ़ैसला क्या राजनाथ सिंह का था? क्या चुनाव प्रचार के दौरान हुई ग़लतियों की वजह से नाराज़ हुए कार्यकर्ताओं की ज़िम्मेदारी भी उनकी है? भाजपा के लोगों को पता है कि इन फ़ैसलों के वक़्त राजनाथ सिंह चुनाव के मुख्य रणनीतिकारों में से नहीं थे, बल्कि इसके उलट पार्टी के मुख्य रणनीतिकार के निशाने पर थे. उनकी अगर कोई ग़लती है तो वह यह है कि पार्टी के कुछ नेता मनमानी करते रहे और बाहरी लोगों के हाथ पार्टी की कमान चली गई. वह अध्यक्ष की कुर्सी पर विराजमान होते हुए भी इसकी अनदेखी करते रहे. अगर राजनाथ सिंह ने उस वक़्त कार्रवाई की होती तो शायद इन सलाहकारों की वजह से पार्टी को हार का मुंह देखना नहीं पड़ता.

कहां हैं जेटली

जो सही मायनों में हार के लिए दोषी थे, वही इस राष्ट्रीय कार्यकारिणी से ग़ायब रहे. जिन पर इल्ज़ाम था, वह यूरोप की सैर कर रहे थे. जसवंत सिंह, यशवंत सिन्हा और अरुण शौरी जैसे पार्टी के कई वरिष्ठ नेता यह मांग करते रहे हैं कि चुनावी हार के लिए ज़िम्मेदार लोगों की जवाबदेही तय हो. इन नेताओं का यह आरोप भी है कि पराजय के लिए ज़िम्मेदार लोगों को जवाबदेह बनाने के बजाय उन्हें पुरस्कृत किया जा रहा है. ये लोग चुनाव के मुख्य रणनीतिकार रहे अरुण जेटली को राज्यसभा में विपक्ष का नेता बनाए जाने से बेहद नाराज़ हैं. चुनाव में पार्टी के प्रदर्शन की समीक्षा के लिए हो रही इस महत्वपूर्ण बैठक के समय चुनाव प्रचार के मुख्य रणनीतिकार रहे अरुण जेटली यूरोप में छुट्टियां बिता रहे हैं. अरुण जेटली की नज़र में राष्ट्रीय कार्यकारिणी का महत्व क्या है, इसका अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है. हैरानी की बात यह है कि जेटली तो कार्यकारिणी से नदारद रहे, लेकिन उनके पैरोकार कई नेताओं ने उनकी कमी पूरी कर दी. कार्यकारिणी के दूसरे दिन जेटली के नज़दीकी समझे जाने वाले नेताओं ने पार्टी के अंदर चिट्ठी लिखने और उसे लीक करने वालों पर जमकर प्रहार किया. ये नेता जसवंत सिंह, यशवंत सिन्हा और अरुण शौरी का नाम लिए बिना उनका विरोध कर रहे थे. हालांकि जब अरुण शौरी ने इसके जवाब में तर्क दिया कि भाजपा की ख़बरें लीक करने वाले पत्रकारों की टोली की छानबीन होनी चाहिए तो यह भी पता चल जाएगा कि पार्टी की अंदर की बातें प्रेस में लीक करने वाला मास्टरमाइंड कौन है. शौरी अपनी बातें पूरी कर पाते कि राजनाथ सिंह ने उन्हें आगे बोलने से रोक दिया. इसका मतलब साफ है कि भाजपा के वरिष्ठ पदाधिकारी नहीं चाहते थे कि कार्यकारिणी में हार पर बहस हो. इनकी योजना अब साफ-साफ नज़र आ रही है कि संगठन के तौर तरीक़े को बदलने को तैयार नहीं हैं.

फोटो- *प्रभात पाण्डेय*

हिंदुत्व पर कशमकश...

भाजपा अध्यक्ष कहते हैं कि पार्टी हिंदुत्व की राह पर चलेगी. उधर, पार्टी के कुछ नेता कहते हैं कि हिंदुत्व की वजह से हार हुई. अध्यक्ष हार का दोष हिंदुत्व के मुद्दे को दिए जाने को ख़ारिज़ करते हैं और कहते हैं कि पार्टी अपनी विचारधारा नहीं छोड़ेगी. पार्टी के दूसरे नेता कहते हैं, कट्टर विचारधारा की वजह से मुस्लिम वोट नहीं देते. राजनाथ चाहते हैं कि हिंदुत्व का झंडा बुलंद करके आरएसएस की ताक़त का इस्तेमाल किया जाए. पार्टी के कई नेता कहते हैं कि मुसलमानों को भी ख़ुश करने की तरकीब निकालनी चाहिए. हिंदुत्व को लेकर जितना भ्रम इस कार्यकारिणी में दिखा, उतना पहले कभी नहीं देखा गया. विचारधारा पर असमंजस होने से ही भाजपा राष्ट्रीय कार्यकारिणी की बैठक में जमकर नाटक हुआ. मेनका गांधी की मुस्लिम नेताओं शाहनवाज़ हुसैन तथा मुख्तार अब्बास नकवी से बहस हो गई. मामले ने ऐसा तूल पकड़ा कि सब बोलने लगे. अपनी भड़ास निकालने लगे.

मामला कुछ ऐसा था. शाहनवाज़ हुसैन पार्टी के आंतरिक मसलों को मीडिया को लीक किए जाने पर अपनी नाराज़गी जता रहे थे. उसी समय मेनका ने आरोप लगाया कि हुसैन ही अक़्सर पार्टी के अंदरूनी मसलों को मीडिया के आगे बोलते आए हैं. नकवी अचानक हुसैन के बचाव में खड़े हो गए. बहस इतनी तेज़ हो गई कि राजनाथ सिंह को बीच-बचाव करना पड़ा. भाजपा के दोनों मुस्लिम चेहरे मेनका से तभी से नाराज़ चल रहे थे, जब से उन्होंने यह बयान दे दिया कि मुसलमान भाजपा को वोट नहीं देते. मेनका अपने बेटे वरुण को बचाने की कोशिश में लगी हैं. जब से दोनों मुस्लिम नेताओं ने उनके बेटे वरुण गांधी पर भड़काऊ भाषण देने के लिए मोर्चा खोला, तब से ये दोनों नेता मेनका के निशाने पर हैं. शाहनवाज़ हुसैन और मुख्तार अब्बास नकवी का मानना है कि वरुण के भड़काऊ भाषण की पार्टी को भारी क़ीमत चुकानी पड़ी है. वरुण के भड़काऊ भाषण से मतों का ध्रुवीकरण हो गया, जिससे उत्तर प्रदेश में भाजपा को अधिकतर सीटों पर नुकसान हुआ. वहीं, मेनका मानती हैं कि मुसलमान भाजपा को वोट नहीं देते. इसलिए उनके वोटों के नुकसान को ज़्यादा तरजीह देने की ज़रूरत नहीं है. मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान, बिहार के उप-मुख्यमंत्री सुशील कुमार मोदी और महाराष्ट्र भाजपा के वरिष्ठ नेता गोपीनाथ मुंडे ने मेनका गांधी के इस तर्क को ख़ारिज़ कर दिया. बिहार के उप मुख्यमंत्री सुशील मोदी ने अल्पसंख्यक समुदाय को लुभाने के बारे में बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार का उदाहरण दिया. मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान ने भी इस बात को ग़लत बताया कि किसी ऐसे समुदाय को नज़रअंदाज़ कर देना चाहिए, जिसमें मतदाताओं की अच्छी ख़ासी संख्या हो. शिवराज ने कहा, हिंदुत्व का असली अर्थ विकास है. महाराष्ट्र के पूर्व उप-मुख्यमंत्री गोपीनाथ मुंडे ने भी कट्टरवादी विचारधारा की मुख़ालफत की. उन्होंने कहा कि अगर कोई ख़ास समुदाय भाजपा को वोट नहीं देता इसलिए पार्टी उस समुदाय को नज़रअंदाज़ कर दे, ऐसा रवैया अपनाना पार्टी के लिए घातक होगा. भाजपा की राष्ट्रीय कार्यकारिणी की बैठक में इन नेताओं की सलाह तो सही है, लेकिन भाजपा की ऐसी क्या मजबूरी है कि पार्टी को ज़ोर-शोर से यह ऐलान करना पड़ा कि भाजपा हिंदुत्व के मुद्दे पर क़ायम रहेगी. विचारधारा को लेकर राष्ट्रीय कार्यकारिणी में अजीबोगरीब भ्रम देखने को मिला. राजनाथ सिंह तो एक तरफ़ यह कह रहे थे कि राम मंदिर, अनुच्छेद 370 और कॉमन सिविल कोड जैसे मुद्दे भाजपा के मुख्य मुद्दे हैं. इन मुद्दों पर पार्टी पीछे नहीं हटेगी. ये मुद्दे ही पार्टी को कांग्रेस से अलग करते हैं. यही भारतीय जनता पार्टी की पहचान है. दूसरी तरफ़ शिवराज सिंह चौहान, सुशील मोदी और गोपीनाथ मुंडे ने भाजपा को अल्पसंख्यकों के प्रति नरम रवैया अपनाने का समर्थन किया. पुरानी कहावत है, मुंह में राम बगल में छुरी. अगर नरेंद्र मोदी को पार्टी का चेहरा बनाया जाएगा और आडवाणी को पोस्टर ब्वॉय, तो पार्टी कितनी भी कोशिश कर ले मुसलमान भाजपा को वोट नहीं देने वाले हैं. चाहे भाजपा के नेता चिल्ला- चिल्ला कर कहते रहें कि हिंदुत्व का मतलब सब धर्म और जाति के लोगों को एक साथ लेकर चलना है, कोई भी अल्पसंख्यक समुदाय उनके झांसे में नहीं आने वाला है. मुसलमान भाजपा को इसलिए वोट नहीं देते क्योंकि पार्टी जिसे मुख्य मसला कहती है मुसलमान उसका विरोध करते हैं. पार्टी जिन मुद्दों को अपनी पहचान बताती है, उससे मुसलमानों को ख़तरा लगता है. एक बात तो तय है कि जिन लोगों ने बाबरी मस्ज़िद गिराने का काम किया उसे मुसलमान वोट नहीं देंगे. जो जवाबदेह नेता गुजरात के दंगे के दौरान धृतराष्ट्र बने बैठे रहे, मुसलमानों को दंगे में मरने के लिए छोड़ दिया उन्हें मुसलमानों के वोट नहीं मिल सकते. अगर आडवाणी और उनके सलाहकारों को लगता है कि वरुण की वजह से चुनाव हार गए तो चुनाव आयोग के मना करने के बावजूद वरुण को टिकट ही क्यों दिया गया? मुसलमानों का वोट चाहिए था तो 370, समान नागरिक संहिता, गो-हत्या, बाबरी मस्ज़िद जैसे मुद्दों को घोषणापत्र में क्यों शामिल किया गया? इससे यही सबित होता है कि पार्टी विचारधारा को लेकर दिशाहीन हो चुकी है. विचारधाराहीन पार्टी की पहचान यही होती है कि किसी भी विषय पर उसकी कोई तय नीति नहीं होती. हर नेता अपने हिसाब से बोलता है. जिसे जो मन आता है, पार्टी की विचारधारा बताने लगता है. राष्ट्रीय कार्यकारिणी के बाद भाजपा के कुछ नेता तो यह भी कह रहे हैं कि वरुण को बेवजह बलि का बकरा बनाया जा रहा है. संघ के नज़दीकी नेता कहते हैं कि बाबरी मस्ज़िद को ध्वस्त करने के बाद से ही मुस्लिम भाजपा से नफरत करते हैं. जो लोग वरुण गांधी के मुस्लिम विरोधी भाषणों को ज़िम्मेदार ठहरा रहे हैं, वे ग़लत हैं. उत्तर प्रदेश के कई नेता भी यही मानते हैं कि प्रदेश में पार्टी के ख़राब प्रदर्शन का कारण वरुण नहीं हैं. उनके कारण तो कुछ सीटें आ भी गईं वर्ना वे भी नहीं आतीं. हार की असल वजह टिकटों का ग़लत बंटवारा, कार्यकार्तओं की नाराज़गी और प्रदेश के चुनाव प्रभारी का ठीक से काम नहीं करना है. चुनाव के नतीजे भी इसी बात की ओर संकेत करते हैं कि भाजपा के मतदाता ही वोट देने नहीं निकले. वरुण गांधी को इसलिए कठघरे में खड़ा किया जा रहा है ताकि हार के ज़िम्मेदार लोगों की गर्दन बचाई जा सके. इन बातों से तो यही लगता है कि राष्ट्रीय कार्यकारिणी के ख़त्म हो जाने के बावजूद पार्टी को यह पता नहीं चल पाया है कि हार की वजह क्या है. आडवाणी, जेटली, वरुण गांधी, मोदी, पार्टी के सलाहकार, भितरघात, हिंदुत्व, आरएसएस, ग़लत रणनीति, आक्रामक प्रचार या नाराज़ कार्यकर्ता दो दिनों तक सिरफुटव्वल करने के बाद भी पार्टी के नेता एकमत पर नहीं पहुंच सके कि हार के लिए इनमें से कौन कितना ज़िम्मेदार है? भाजपा की विचारधारा में मौजूद आंतरिक विरोधाभास अब सबके सामने है. यही वजह है कि नेताओं के अलग-अलग विचार और बयान सामने आ रहे हैं. भाजपा में विचारधारा को लेकर अजीब सी भ्रामकता है. पार्टी यही तय नहीं कर पाई है कि हिंदुत्व क्या है. कौन से डिज़ाइनर हिंदुत्व को अपनाना है और कौन से आउटडेटेड हिंदुत्व को त्याग देना है. पार्टी में जवाबदेही के मुद्दे पर उठे बवाल को शांत करने के लिए पूरे विषय को ही टाल दिया गया. पार्टी ने इन मामलों पर चिंतन बैठक में बहस करने का फ़ैसला किया है. चिंतन बैठक कब होगी, इसकी तारीख़ अभी तय नहीं हुई है. कुल मिलाकर यही कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय कार्यकारिणी में असल मुद्दों को दबाने में आडवाणी और राजनाथ सिंह कामयाब रहे. विरोध के स्वर उठाने वाले नेताओं को अनुशासन का डंडा दिखा कर शांत कर दिया गया. हालांकि यह शांति ज़्यादा दिनों तक टिकने वाली नहीं है. भाजपा ऐसे रोग से ग्रस्त हो चुकी है जिसका इलाज सिर्फ़ कठोर फ़ैसले से ही किया जा सकता है. राष्ट्रीय कार्यकारिणी के बाद की शांति किसी भयंकर तूफान के आने से पहले की ख़ामोशी है. आप बस थोड़ा इंतज़ार कीजिए, क्योंकि असली खेल अभी बाक़ी है.

manish .chauthiduniya@gmail.com

वजूद बचाने को है माया-भजन समझौता

संजीव पांडेय

अपने राजनीतिक जीवन के सबसे बुरे दिन देख रहे भजनलाल ने अंतिम जुआ खेला है. कई तरफ़ से थपेड़े झेल रहे भजनलाल ने अब मायावती के सहयोग से हरियाणा में कांग्रेस को घेरने की योजना बनाई है. आने वाले विधानसभा चुनाव में भजनलाल की हरियाणा जनहित कांग्रेस और बहुजन समाज पार्टी मिलकर चुनाव लड़ेगी. हरियाणा विधानसभा चुनाव में अपनी जीत निश्चित मान रही कांग्रेस के लिए निश्चित रूप से यह बुरी ख़बर है. वोट बैंक के लिहाज़ से बसपा और भजनलाल की हरियाणा जनहित कांग्रेस का साथ आना ख़तरनाक है. संभावना जताई जा रही है कि आगामी विधानसभा चुनाव में कांग्रेस को कड़ी टक्कर मिलेगी. राज्य में एक बार फिर ग़ैर जाट मतदाताओं को इकट्ठा होने का अवसर मिला है. उधर, उत्तर प्रदेश में कांग्रेस के प्रहारों को झेल रही मायावती भी कांग्रेस को स्पष्ट संकेत दे रही हैं कि आने वाले समय में वह यूपी से बाहर ग़ैर कांग्रेसी दलों से समझौता करेंगी. इससे निश्चित तौर पर कांग्रेस की परेशानी बढ़ेगी. मायावती की यह रणनीति यूपी में कांग्रेस को रक्षात्मक रुख़ अपनाने पर मजबूर कर सकती है.

फोटो–पीटीआई

18 जून को लखनऊ में मायावती, भजनलाल और उनके बेटे कुलदीप ने संयुक्त रूप से अपनी रणनीति का खुलासा किया. इस रणनीति के तहत हरियाणा विधानसभा चुनाव दोनों मिल कर लड़ेंगे. बड़े दल की भूमिका में भजनलाल की हरियाणा जनहित कांग्रेस रहेगी, जबकि बसपा छोटे भाई की भूमिका में रहेगी. भजनलाल की पार्टी पचास सीटों पर चुनाव लड़ेगी. कुलदीप विश्नोई मुख्यमंत्री पद के उम्मीदवार होंगे. बसपा चालीस सीटों पर लड़ेगी. बसपा को सता में आने के बाद डिप्टी सीएम पद मिलेगा. वह दलित वर्ग से होगा. गुप्त तरीक़े से किए गए इस समझौते से कांग्रेसी उलझन में हैं. आनन–फानन में हरियाणा के मुख्यमंत्री भूपेंद्र सिंह हुड्डा ने कहा, शून्य प्लस शून्य बराबर शून्य. हालांकि यह बयान सच्चाई बयां नहीं करता. समझौते को जिस गुपचुप तरीक़े से अंजाम दिया गया उससे कांग्रेसी हैरान हैं. कांग्रेस को पता तक नहीं चला. राज्य सचिवालय की गैलरी में सक्रिय पत्रकारों को इसकी जानकारी तक नहीं मिली. सीधे लखनऊ से ख़बर आई, समझौता हो गया. पत्रकारों के फोन बजने लगे. क्योंकि सब कुछ अप्रत्याशित था. बसपा ने इस बार कांग्रेस को बेवकूफ बनाने के लिए अलग इशारा कर रखा था. बसपा नेता यह संकेत दे रहे थे कि विधानसभा चुनाव में समझौते के लिए उनकी बातचीत इनेलो के ओमप्रकाश चौटाला से चल रही है. इस समझौते के पीछे तर्क यह था कि इनेलो के जाट और बसपा के दलित समीकरण से राज्य विधानसभा में कांग्रेस को घेरा जाएगा. पर सारा खेल ही उल्टा हो गया.

उधर, इन सारी परिस्थितियों में हजकां के अंदर हो रहे विद्रोह रुकने के संकेत हैं. हरियाणा जनहित कांग्रेस के दो नेताओं–सुभाष बतरा और पूर्व मंत्री कृष्णमूर्ति हुड्डा–ने हाल ही में विद्रोह कर दिया था और पार्टी अध्यक्ष कुलदीप विश्नोई को ही पार्टी से निकालने का दावा किया था. उन्हें लग रहा था कि भजनलाल अब गए दिन की बात हो गए. उनकी कोई राजनीतिक हैसियत नहीं है, क्योंकि भजनलाल ख़ुद हिसार से काफी मुश्किल से जीत कर लोकसभा पहुंच पाए हैं. उधर लोकसभा चुनाव में 59 विधानसभा क्षेत्रों में कांग्रेस को मिली बढ़त ने हरियाणा जनहित कांग्रेस के नेताओं को निराश कर दिया था. वे नए ठौर की तलाश में थे. पर एकाएक नए डेवलपमेंट ने हजकां नेताओं को भी हैरान कर दिया. अब यहां विद्रोह रुक गया है और विधानसभा में सीट पाने की जुगत में कई नेता लग गए हैं, क्योंकि बसपा–हजकां गठबंधन उन्हें मज़बूत गठबंधन लग रहा है. कुलदीप विश्नोई के समर्थकों का मानना है कि समझौता इसलिए गुपचुप किया गया, क्योंकि कांग्रेस इस समझौते में भांजी मार सकती थी. लोकसभा चुनावों के दौरान भी हरियाणा जनहित कांग्रेस और बसपा के बीच पांच–पांच सीटों पर समझौते के बात चली थी. कुछ बसपा और कांग्रेसी नेताओं की मिलीभगत के कारण यह समझौता सिरे नहीं चढ़ सका था. इसलिए इस बार सीधे मायावती ने भजनलाल और कुलदीप विश्नोई को गुप्त तरीक़े से लखनऊ बुला लिया.

भजनलाल इस समय राजनीति के सबसे बुरे दिन देख रहे हैं. हरियाणा में कभी एकछत्र राज करने वाले भजनलाल राजनैतिक रूप से अंतिम लड़ाई लड़ रहे हैं. पिछले विधानसभा चुनाव के बाद कांग्रेस ने जहां उन्हें धोखा दिया, वहीं पारिवारिक फ्रंट पर हरियाणा के डिप्टी सीएम रहे उनके बेटे चंद्रमोहन ने धोखा दिया. वह चंद्रमोहन से चांद मोहम्मद हो गए और अनुराधा बाली उर्फ फ़िज़ा से विवाह रचा लिया. काफी हद तक चंद्रमोहन को समझाने में कामयाब रहे भजनलाल को तब झटका लगा जब विदेश से लौटने के बाद दुबारा चंद्रमोहन अपनी पहली पत्नी सीमा विश्नोई को छोड़ फ़िज़ा के पास चले गए. हालांकि चंद्रमोहन का राजनीतिक करियर बनाने में भजनलाल ने कोई कसर नहीं छोड़ी. राजनीतिक तौर पर अनाड़ी चंद्रमोहन को भजनलाल 1991 से लगातार विधायक बना रहे थे.

पिछली बार कांग्रेस हाईकमान भजनलाल की मुख्यमंत्री की कुर्सी भूपेंद्र सिंह हुड्डा को सौंप दी, तो चंद्रमोहन को डिप्टी सीएम बनाया गया. हाईकमान ने किसी भी संभावित विद्रोह को रोकने के लिए चंद्रमोहन को डिप्टी सीएम बनाया. पर चंद्रमोहन ने भजनलाल की विरासत को आगे बढ़ाने के बजाए पंजाब एवं हरियाणा हाईकोर्ट की वकील अनुराधा बाली से दूसरी शादी कर ली. वह चंद्रमोहन से चांद मोहम्मद हो गए. अनुराधा बाली फ़िज़ा हो गई. ऐसे में भजनलाल के दूसरे बेटे कुलदीप विश्नोई ने ही सारी कमान संभाल रखी है जो राजनीतिक रूप से भजनलाल की तरह ही कुशल माने जाते हैं. यह समझौता कांग्रेस के लिए मुश्किलें पैदा कर सकता है. एक तरफ़ बसपा के पास जहां दलित वोट बैंक है, वहीं भजनलाल के पास ग़ैर दलित–ग़ैर जाट पंजाबी, ब्राह्मण वोट बैंक हैं. लोकसभा चुनाव में जहां ये मतदाता भ्रमित थे, बसपा और हजकां के अलग होने से इधर–उधर बंट गए थे, इस बार एकजुट हो सकते हैं. इसलिए कि लोकसभा चुनावों में बसपा और हरियाणा जनहित कांग्रेस को ग़ैर जाट मतदाता मुख्य लड़ाई में नहीं मान रहे हैं. उन्हें लगता था कि बसपा और हजकां के बीच समझौता नहीं है और कांग्रेस से सीधी टक्कर इनेलो–भाजपा गठबंधन ही ले सकता है. पर चुनाव परिणाम चौंकाने वाले रहे. इनेलो को बसपा से भी कम वोट मिले. इनेलो और भाजपा को संयुक्त रूप से लड़ने के बाद भी एक सीट नहीं मिली. इनेलो चुनाव परिणाम आने के बाद वोट बैंक के लिहाज़ से तीसरे नंबर पर चला गया, जबकि भाजपा चौथे नंबर पर चली गई. पिछले पांच सालों में मुख्यमंत्री भूपेंद्र सिंह हुड्डा ने ओम प्रकाश चौटाला के जाट वोट बैंक में भारी सेंध लगा दी है. पर इसका नुकसान हुड्डा को होने की भी आशंका है. ग़ैर जाट मतदाताओं में यह मैसेज गया है कि हुड्डा ने ग़ैर जाटों के बजाए जाटों को प्राथमिकता दी है. हालांकि शुरू से हरियाणा में कांग्रेस ग़ैर जाटों के पैरोकार के रूप में मानी जाती रही है. भूपेंद्र सिंह हुड्डा ने दलितों के कल्याण के लिए काफी योजनाएं चलाई हैं, पर लोकसभा चुनावों में दलितों का भारी वोट बसपा उम्मीदवार ले गए. यही कारण है कि बसपा–हजकां की संयुक्त चुनौती को कांग्रेसी गंभीरता से ले रहे हैं. लोकसभा चुनाव में इनेलो के भय से बड़े पैमाने पर ग़ैर जाट, व्यापारी, पंजाबी मतदाता कांग्रेस को वोट दे गए, क्योंकि वे ओमप्रकाश चौटाला से भयभीत थे. पर चुनाव परिणाम चौंकाने वाले रहे. इनेलो तो बसपा से भी नीचे चली गई. इनेलो को बसपा से भी कम वोट मिले. इनेलो और भाजपा को पूरे प्रदेश की 10 सीट में से एक भी सीट नहीं मिली. वहीं इस बार ग़ैर जाट मतदाताओं के बीच ग़ैर जाट मुख्यमंत्री का ज़ोरदार नारा देने की योजना भी बसपा और हजकां ने बनाई है. हरियाणा में पिछले 13 साल से ग़ैर जाट मुख्यमंत्री की ताजपोशी नहीं हुई. पहले बंसीलाल, उसके बाद ओमप्रकाश चौटला और फिर भूपेंद्र सिंह हुड्डा हरियाणा के सीएम बने. तीनों जाट नेता हैं. इसलिए इस बार कुलदीप विश्नोई को ग़ैर जाट सीएम के रूप में ज़ोरदार तरीक़े से प्रोजेक्ट करने की योजना है. सामान्य रूप से पहले कांग्रेस ग़ैर जाट सीएम बनाती थी. कांग्रेस में रहते हुए भजनलाल भी ग़ैर जाट कोटे से मुख्यमंत्री बनते रहे. लेकिन 2005 विधानसभा चुनाव में भजनलाल के बजाए भूपेंद्र सिंह हुड्डा को सीएम बनाकर कांग्रेस ने जाट कार्ड खेला. इसके बाद से ही राज्य में ग़ैर जाट जिसमें ब्राह्मण, बनिया, पंजाबी और दलित आते हैं, निराश हैं. पर अभी तक उनके सामने समस्या यह रही कि कोई सही विकल्प सामने नहीं आया. ग़ैर जाटों में दलित ब्राह्मण, बनिया ओमप्रकाश चौटाला को पसंद नहीं करते. अगर भाजपा–इनेलो गठबंधन सता में आता है तो ओमप्रकाश चौटाला सीएम बनेंगे. ऐसे में बसपा–हजकां गठबंधन का ग़ैर जाट सीएम का नारा भी प्रभावी होने की संभावना है. वैसे बसपा–भजनलाल गठबंधन के बाद इनेलो और भाजपा को भी कम चिंता नहीं है. भाजपा प्रदेश में पूरी तरह से हाशिए पर है. संगठन और नेता दोनों कमज़ोर हैं. मजबूरी में ओमप्रकाश चौटाला का हाथ थामा था. पार्टी का एक ग्रुप विधानसभा में चौटाला के बजाए भजनलाल से हाथ मिलाने को तैयार था. इसके लिए दिल्ली में बातचीत चल रही थी, पर ऐन मौके पर भजनलाल ने बसपा को पकड़ा. अब भाजपा के पास चौटाला के सिवाए कोई चारा नहीं है. कुछ भाजपा नेता एकला चलो की नीति पर हैं, पर इसमें ज़मानत ज़ब्त होने के सिवाए कोई और चारा नहीं रहेगा. उधर, चौटाला भी इस नए गठजोड़ से परेशान हैं. ग़ैर जाट मतदाता चौटाला को नापसंद करते हैं. ऐसे में ग़ैर जाटों का ज़ोरदार ध्रुवीकरण कांग्रेस ही नहीं चौटाला को भी परेशान करेगा. चौटाला की परेशानी यह है कि उनके परंपरागत जाट वोट बैंक में कांग्रेस ने जोरदार सेंध लगा दी है. उधर, कांग्रेस के भीतर भी सब कुछ अच्छा नहीं चल रहा है. पार्टी का एक वर्ग भूपेंद्र सिंह हुड्डा का विरोध करता है. वित्त मंत्री वीरेंद्र सिंह उनके विरोधी हैं. लोकसभा चुनावों में टिकट नहीं मिलने की टीस भी उन्हें है. कई बड़े कांग्रेसी नेताओं को जेसिका लाल हत्या कांड के सज़ायाफ्ता मनु शर्मा के पिता विनोद शर्मा और भूपेंद्र सिंह हुड्डा की जोड़ी भी नहीं भाती है. विनोद शर्मा और भूपेंद्र सिंह हुड्डा की जोड़ी ही पिछले पांच सालों से हरियाणा की सरकार चला रही है. विनोद शर्मा अंबाला शहर से विधायक हैं.

उधर, भूपेंद्र सिंह हुड्डा को चुनौती बंसीलाल परिवार से भी है. बंसीलाल के बेटे स्वर्गीय सुरेंद्र सिंह की पत्नी और प्रदेश में मंत्री किरण चौधरी समय–समय पर हुड्डा के लिए परेशानी पैदा करती रही हैं. किरण चौधरी सीधे दस जनपथ की नज़दीक हैं. बंसीलाल के परिवार के जोरदार विरोध के बावजूद बंसीलाल की राजनीतिक विरासत पर किरण चौधरी ने क़ब्ज़ा कर लिया है. यह दूसरी बात है कि बंसीलाल के विधायक बेटे रणवीर महिंद्रा, विधायक दामाद सोमवीर आदि ने इसका विरोध किया था. किरण चौधरी ने अपनी बेटी श्रुति चौधरी को भिवानी लोकसभा क्षेत्र से चुनाव जिताकर राज्य की राजनीति में पैर जमाने के संकेत दे दिए हैं. कुल मिलाकर कांग्रेस में बंसीलाल के परिवार की तरफ़ से अन्य कांग्रेसी नेताओं को चुनौती जारी है.

भजनलाल इस समय राजनीति के सबसे बुरे दिन देख रहे हैं. हरियाणा में कभी एकछत्र राज करने वाले भजनलाल राजनैतिक रूप से अंतिम लड़ाई लड़ रहे हैं. पिछले विधानसभा चुनाव के बाद कांग्रेस ने जहां उन्हें धोखा दिया, वहीं पारिवारिक फ्रंट पर डिप्टी सीएम रहे उनके बेटे चंद्रमोहन ने धोखा दिया.

क्या इतिहास दोहरा पाएंगे भजनलाल और कुलदीप?

प्रदेश की राजनीति में बार–बार यह सवाल उठ रहा है कि क्या भजनलाल और कुलदीप विश्नोई इतिहास दोहरा पाएंगे? सामान्य रूप से कांग्रेस से विद्रोह कर राजनीति शुरू करने वाले नेता हरियाणा की राजनीति पर लंबे समय तक क़ाबिज़ रहे हैं. देवीलाल अपने राजनीतिक जीवन की शुरुआत में कांग्रेस में थे. जब कांग्रेस से अलग हुए तो हरियाणा की राजनीति में लंबे समय तक क़ाबिज़ रहे. वह कांग्रेस विरोधी राजनीति के केंद्र बने रहे. इसके बाद हरियाणा में बंसीलाल ने कांग्रेस से बग़ावत कर दी.

कांग्रेस की राजनीति में पूछ न होने के कारण बंसीलाल ने कांग्रेस छोड़ी और हरियाणा विकास पार्टी खड़ी कर दी. हरियाणा विकास पार्टी ने भाजपा के सहयोग से हरियाणा की सत्ता पर क़ब्ज़ा जमा लिया. यह भी दिलचस्प मामला है कि जिस भूपेंद्र सिंह हुड्डा के कारण आज भजनलाल बग़ावत कर अलग हुए, वही भजनलाल नरसिंह राव के दौर में बंसीलाल की बग़ावत के कारण बने थे.

नरसिंह राव के समय में भजनलाल की तूती बोलती थी और कांग्रेस की राजनीति में बंसीलाल का बुरा हाल हो गया था. पर बंसीलाल ने एक बार फिर हरियाणा की राजनीति में कांग्रेस को जमा दिया और ख़ुद मुख्यमंत्री बन गए. अब यह सवाल उठ रहा है कि भूपेंद्र सिंह हुड्डा के कारण कांग्रेस छोड़ हरियाणा जनहित कांग्रेस बनाने वाले भजनलाल और उनके बेटे कुलदीप विश्नोई क्या वही इतिहास दोहरा पाएंगे?

वोट बैंक के मामले में बसपा चौटाला से आगे निकली

हाल के लोकसभा चुनाव में हरियाणा की 10 सीटों पर वोट बैंक के हिसाब से बसपा की बढ़त ओमप्रकाश चौटाला की पार्टी इनेलो पर हो गई है. बसपा को इस लोकसभा चुनाव में 15.73 फीसदी वोट मिले, जबकि इनेलो को 15 प्रतिशत वोट मिले. वहीं भाजपा को 12 प्रतिशत वोट मिले हैं, जबकि हरियाणा जनहित कांग्रेस को 9.89 प्रतिशत वोट मिले. दूसरी ओर, कांग्रेस को कुल 41 प्रतिशत वोट मिले. विधानसभा क्षेत्र के हिसाब से देखा जाए तो कांग्रेस को 59 विधानसभा क्षेत्रों में बढ़त मिली.

बसपा को राज्य के कुल नौ विधानसभा क्षेत्रों में बढ़त मिली. इसी तरह हरियाणा जनहित कांग्रेस को आठ विधानसभा क्षेत्रों में बढ़त मिली. वहीं इनेलो को सात और भाजपा को सात विधानसभा क्षेत्रों में बढ़त मिली. मायावती की पार्टी ने राज्य के अंबाला, गुड़गांव, करनाल, फरीदाबाद और कुरुक्षेत्र सीटों पर ज़ोरदार चुनौती पेश की. करनाल और गुड़गांव में पार्टी दूसरे नंबर पर रही और भाजपा को तीसरे नंबर पर धकेलने में कामयाब हो गई, जबकि हरियाणा जनहित कांग्रेस ने हिसार की सीट जीत ली. वहीं भिवानी और गुड़गांव में भी वह अच्छे वोट लेने में कामयाब रही.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

दुनिया

राहुल की सौगात राजनीति में रोज़गार

रूबी अरुण

कांग्रेस महासचिव दिग्विजय सिंह कहते हैं कि यह विचार राहुल गांधी के दिमाग़ की उपज है. राहुल कांग्रेस में नए चेहरों के साथ पूरी तरह पेशेवर रुख़ लाना चाहते हैं. राहुल का मानना है कि देश जितना व्यापक शब्द है, उससे भी ज़्यादा बड़ा सवाल है कि देश बनाता कौन है. ज़ाहिर है, इसमें सर्वाधिक भागीदारी युवाओं की ही होती है. इस वक़्त भारत की जनसंख्या का पचास प्रतिशत से अधिक हिस्सा 25 से 40 वर्ष की आयु वर्ग का है और यही वर्ग अभी सामाजिक, आर्थिक, शारीरिक और मानसिक रूप से सबसे ज़्यादा सक्रिय है.

फोटो–*प्रभात पाण्डेय*

संसद की सूरत अब बदलने वाली है. अनपढ़, गंवार, देशज और भदेस क़िस्म के नेताओं के दिन अब लदने वाले हैं. उनकी जगह ऊंची तालीम हासिल किए नौजवान काबिज़ होने वाले हैं. यह महज़ मुंगेरी लाल का सपना नहीं है, बल्कि वह हक़ीक़त है जो अगले कुछ साल में ठोस आकार ग्रहण करने वाली है. कांग्रेस महासचिव राहुल गांधी का सपना है कि देश की सियासत की डोर युवाओं के हाथ रहे. उन्होंने इसकी पुरज़ोर कवायद भी शुरू कर दी है. इसके लिए राहुल यूपीएससी की तर्ज़ पर देश भर में कांग्रेस की ओर से परीक्षाएं आयोजित करा रहे हैं. राहुल ने अपनी परीक्षा तो पास कर ली है अब वह देश के युवाओं का इम्तहान ले रहे हैं. जो इस परीक्षा में पास होगा उसे कांग्रेस राजनीति में करियर बनाने का मौका देगी. मतलब यह कि राजनीति अब सिर्फ दांव–पेंच का खेल नहीं रहेगा, बल्कि युवाओं को राजनीति में रोज़गार मिलेगा. उन्हें उनकी योग्यता के मुताबिक पार्टी संगठन में पद दिया जाएगा और योग्यता के अनुसार वेतन भी. अगर कोई व्यक्ति अपनी ज़िम्मेदारियां बेहतर तरीक़े से निभाता है और उसका प्रदर्शन बेहतर होता है तो उसे तरक़्क़ी दिए जाने का भी प्रावधान रखा गया है. राहुल जानते हैं कि आम चुनाव में कांग्रेस को यूपी में जो कामयाबी मिली है अगर उसे उत्तर प्रदेश विधानसभा चुनाव में भी भुनाना है तो वहां एक समर्पित युवा टीम की ज़रूरत पड़ेगी. उस टीम की परिकल्पना को इसी तरह साकार किया जा सकता है. इसके अलावा जो बड़ी बात है, वह यह कि राहुल की इस परिकल्पना के ज़रिए जो शिक्षित युवक राजनीति में आएंगे, वे एक साफ–सुथरी राजनीति के वाहक बनेंगे. वे महज़ उठा–पटक, षड्यंत्र और तोहमतों की राजनीति नहीं करेंगे, बल्कि समग्र विकास की बात करेंगे. ऊंचे सपनों और बड़ी स्वाहिशों को लिए ये जोशीले नौजवान जब विधानसभाओं और संसद में पहुचेंगे तो वहां आम–आवाम के हितों की बात करेंगे.

कांग्रेस महासचिव दिग्विजय सिंह कहते हैं कि यह विचार राहुल गांधी के दिमाग़ की उपज है. राहुल कांग्रेस में नए चेहरों के साथ पूरी तरह पेशेवर रुख़ लाना चाहते हैं. राहुल का मानना है कि देश जितना व्यापक शब्द है, उससे भी ज़्यादा बड़ा सवाल है कि देश बनाता कौन है. ज़ाहिर है, इसमें सर्वाधिक भागीदारी युवाओं की ही होती है. इस वक़्त भारत की जनसंख्या का पचास प्रतिशत से अधिक हिस्सा 25 से 40 वर्ष की आयु वर्ग का है और यही वर्ग अभी सामाजिक, आर्थिक, शारीरिक और मानसिक रूप से सबसे ज़्यादा सक्रिय है. इसे अभी बस सही दिशा–निर्देश की आवश्यकता है. राहुल गांधी यही करने की कोशिश कर रहे हैं. कांग्रेस प्रवक्ता मनीष तिवारी कहते हैं कि युवा शक्ति क्या कमाल दिखा सकती है यह बात इस लोकसभा चुनाव में ज़ाहिर हो चुकी है. दुर्भाग्य से अभी तक युवा शक्ति को राजनीतिक पार्टियां नज़रअंदाज़ कर के चल रही थीं. कांग्रेस के अलावा कभी किसी ने युवाओं के हालात पर ग़ौर करने की जहमत नहीं उठाई. यक़ीनन यह एक नए भारत का उदय है.

राजस्थान एनएसयूआई की स्टेट प्रेसीडेंट रंजू रानावत भी राहुल गांधी के टैलेंट हंट के ज़रिए ही आई हैं. रंजू बताती हैं कि राजस्थान के युवा राहुल गांधी के साथ काम करने की सोच कर ही रोमांचित हैं. राजस्थान प्रदेश कांग्रेस के कार्यालय में बेहद पढ़े–लिखे, प्रोफेशनल डिग्री हासिल किए नौजवानों का जमावड़ा कांग्रेस में शामिल होने की उम्मीद लिए लगा रहता है. युवाओं को लगने लगा है कि करियर के लिहाज़ से राजनीति से अच्छा कोई दूसरा विकल्प नहीं. वे इस बात को समझ चुके हैं कि देश और दुनिया के हालात को सिर्फ़ और सिर्फ़ राजनीति में जाकर ही बदला जा सकता है. ख़ासकर राहुल गांधी के करिश्मे के बाद से युवाओं की यह सोच ज़्यादा परिपक्व हुई है.

जयपुर के ऋषि शेखर के पास इनफोसिस से नौकरी का प्रस्ताव है, लेकिन वह उसे ठुकरा कर कांग्रेस में शामिल होना चाहते हैं. वह कहते हें कि अगर वह नौकरी करते हैं तो सिर्फ़ अपने परिवार का ही भला कर सकते हैं, पर अगर राजनीति में आते हैं तो वह समाज का भला कर सकते हैं. ऋषि कहते है कि हमारे बुजुर्ग राजनेताओं ने युवा पीढ़ी को विरासत के नाम पर भ्रष्टाचार, सांप्रदायिकता, घोर जातिवाद और कमज़ोर होता देश ही दिया है. अच्छाई पर बुराई हावी हो गई है. अब वक़्त आ गया है कि युवा वर्ग पूरी ताक़त के साथ राजनीति में शिरकत करे और देश की प्रगति, उसकी मज़बूती में अपना योगदान दे. यही वजह है कि उत्तर प्रदेश का कांग्रेस कार्यालय हो या उत्तराखंड का प्रदेश कांग्रेस कार्यालय, चुभती गर्मी में भी यहां युवाओं की भीड़ उमड़ी पड़ी है. उच्च शिक्षित युवक–युवतियां हाथों में फाइलें लिए अपनी बारी का इंतज़ार करते दिखते हैं. सभी के मन में नेता बनने की हसरत अंगड़ाइयां ले रही हैं. ये सभी अपने–अपने क्षेत्रों में करियर बनाने के बजाय राजनीति में अपना भविष्य बनाना चाहते हैं. राहुल के टैलेंट हंट के ज़रिए जो युवा राजनीति में प्रवेश चाहते हैं, उनकी प्रारंभिक योग्यता कम से कम मैट्रिक होनी चाहिए. उम्र सीमा 35 वर्ष रखी गई है. जो आवेदन आ रहे हैं उनमें स्नातकों की तादाद 90 फीसदी है. इनमें महिलाओं की संख्या भी अच्छी ख़ासी है. राहुल को भी अपने मिशन यूपी में क़ामयाब होने के लिए युवा फौज की ज़रूरत है. चलिए इस बहाने ही सही. इसमें कोई नुकसान तो नहीं है. राहुल की इस तदबीर से कम से कम भारतीय राजनीति की क़िस्मत और शिक्षित बेरोज़गार युवाओं की तक़दीर तो बदल ही सकती है.

ruby.chauthiduniya@gmail.com

राजस्थान एनएसयूआई की स्टेट प्रेसीडेंट रंजू रानावत भी राहुल गांधी के टैलेंट हंट के ज़रिए ही आई हैं. रंजू बताती हैं कि राजस्थान के युवा राहुल गांधी के साथ काम करने की सोच कर ही रोमांचित हैं. राजस्थान प्रदेश कांग्रेस के कार्यालय में बेहद पढ़े–लिखे, प्रोफेशनल डिग्री हासिल किए नौजवानों का जमावड़ा कांग्रेस में शामिल होने की उम्मीद लिए लगा रहता है.

राहुल के टैलेंट हंट को कहीं नज़र न लग जाए

राजकुमार शर्मा

उत्तराखंड के कांग्रेस भवन में आयोजित राहुल गांधी के युवा प्रतिभा खोज कार्यक्रम में अपने–अपने बायोडाटा एवं समाज को दिए गए योगदानों की फाइलों के साथ सैकड़ों युवा पहुंचे. हालांकि राहुल गांधी के सामने इंटरव्यू देने की पूरी तैयारी के साथ पहुंचे सैकड़ों युवक निराश भी हुए. महासचिव और युवा सांसद राहुल गांधी के निर्देश पर भारतीय युवक कांग्रेस के पांच सदस्यीय पैनल ने देवभूमि उत्तराखंड पहुंच कर टैलेंट सर्च कार्यक्रम को आयोजित किया. कार्यक्रम के आयोजन से पहले इसे राहुल गांधी और युवा कांग्रेस से जुड़ने के सुनहरे अवसर के रूप मे प्रचारित किया गया. ऐसे कार्यक्रम राहुल गांधी के निर्देश पर देश के कई राज्यों में आयोजित किए गए हैं. उत्तराखंड की बारी 25वें नंबर पर आई. इस कार्यक्रम में सांसद जितेंद्र सिंह, सांसद दीपेंद्र सिंह हुड्डा, युवा कांग्रेस के राष्ट्रीय अध्यक्ष व सांसद अशोक तंवर, पूर्व केंद्रीय मंत्री जगदीश टाइटलर ने हिस्सा लिया. राहुल गांधी देश के पढ़े–लिखे युवाओं में ख़ासे लोकप्रिय हैं, इसका पता इसी बात से चलता है कि अल्प सूचना के बावजूद ख़ासी संख्या में युवक–युवतियां इंटरव्यू देने आए. इनमें अधिकतर उच्च शिक्षा प्राप्त स्नातक एवं स्नातकोत्तर युवक थे. इनमें आने वाले मात्र पांच प्रतिशत युवा ही ऐसे रहे जिन्होंने स्नातक तक शिक्षा प्राप्त नहीं की थी. टैलेंट सर्च में हिस्सा लेने आए युवाओं में कई तो एमबीए एवं बीटेक जैसी प्रोफेशनल डिग्री ले चुके लोग भी थे. इन युवाओं का मानना है कि राजनीति में भी अच्छे व टैलेंटेड लोगों की ज़रूरत है. अमेरिका से उच्चशिक्षा प्राप्त करके भारत लौटी नेहा शर्मा भी इस सर्च कार्यक्रम में भाग लेने सुबह ही कांग्रेस भवन पहुंची. उनसे जब राजनीति में आने की उनकी मंशा पर सवाल किया गया, तो उन्होंने साफ किया कि वह तो राहुल गांधी से बेहद प्रभावित हैं और उन्हीं की कार्यप्रणाली से प्रभावित होकर राजनीति में संभावनाओं को तलाशने कांग्रेस भवन तक आई हैं. इसी क्रम में लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स से पढ़ाई कर चुके अजीम प्रेमजी ने भी इस टैलेंट सर्च कार्यक्रम में आकर साक्षात्कार दिया. राहुल गांधी के युवाओं से जुड़े कार्यक्रमों से प्रभावित प्रेमजी का मानना है कि जब तक राजनीति में अच्छे लोग नहीं आएंगे तब तक भारत की राजनीति का भला होने वाला नहीं है. प्रेमजी और उन जैसे एक दर्जन से अधिक उच्चशिक्षा प्राप्त युवाओं को राहुल की राजनैतिक सोच से ख़ासी उम्मीद है. इन लोगों का यह भी मानना है कि देश की राजनीति को सुधारने के साथ–साथ जनसेवा का रास्ता भी युवकों को राहुल गांधी ही दिखाएंगे. इसी क्रम में कांग्रेस भवन पहुंची अनुसूचित जाति की छात्रा मालती ने भी राहुल गांधी के चुंबकीय व्यक्तित्व की सराहना करते हुए कांग्रेस की नीतियों के प्रति लगाव प्रदर्शित करते हुए अपना इंटरव्यू दिया. कमज़ोर तबके की इस छात्रा के साथ कई बेहद ग़रीब परिवार के युवकों ने भी इस कार्यक्रम में भाग लेकर राहुल जी के प्रति अपना समर्पण व्यक्त किया.

राहुल गांधी देश के पढ़े–लिखे युवाओं में ख़ासे लोकप्रिय हैं, इसका पता इसी से चल जाता है कि अल्प सूचना के बावजूद ख़ासी संख्या में युवक–युवतियां इंटरव्यू देने आए. इनमें अधिकतर उच्च शिक्षा प्राप्त स्नातक एवं स्नातकोत्तर युवक थे. इनमें आने वाले मात्र पांच प्रतिशत युवा ही ऐसे रहे जिन्होंने स्नातक तक शिक्षा प्राप्त नहीं की थी.

टैलेंट सर्च कमेटी के सदस्यों ने इस कार्यक्रम में भाग लेने आए 600 प्रतिभागियों से आधा दर्जन सवाल पूछे. जैसे, राजनीति में क्यों आना चाहते हैं? समाज के लिए अब तक क्या किया? राहुल गांधी के निगेटिव प्वांइट क्या हैं? आप देश एवं प्रदेश के लिए क्या सोच रखते हैं? राजनीति में आने के लिए कांग्रेस को ही क्यों चुनना चाहते हैं? संगठन को आगे बढ़ने के लिए क्या करना चाहिए? इसके साथ–साथ भाग लेने वाले युवकों के पहनावा, भाषण कला, नेतृत्व क्षमता, संवाद कौशल, दृष्टिकोण, शिक्षा के स्तर की परख की गई. सर्च कमेटी ने अपने नौ स्तरीय परख के मानक पर भाग लेने वाले युवाओं को परखने का प्रयास किया. उत्तराखंड प्रदेश युवा कांग्रेस के अध्यक्ष राजपाल खरोला का मानना है कि इस तरह की परख के द्वारा युवकों का चयन किया जाना देश एवं प्रदेश के लिए शुभ संकेत हैं, इससे राजनीति में नए युवकों को भी सेवा का अवसर मिलेगा. इनका मानना है कि टैलेंट सर्च कार्यक्रम में लगभग एक हज़ार लोगों का रजिस्ट्रेशन कराना युवा वर्ग में कांग्रेस और राहुल गांधी की बढ़ती लोकप्रियता के संकेत हैं. खरोला ने राहुल गांधी का सरकार में मंत्री न बनने की घटना को संगठन के लिए एक वरदान बताते हुए कहा कि सभी लोगों को राहुल की भावना के अनुरूप सेवा प्रदान करने की आवश्यकता है.

बहरहाल, जहां पूरे देश में राजनीति में महिलाओं के लिए 33 प्रतिशत आरक्षण की बात चल रही है, वहीं इस कार्यक्रम में दस फीसदी से भी कम महिलाओं की हिस्सेदारी की वजह से इन नेताओं के माथे पर चिंता की लकीरें भी दिखीं.

युवक कांग्रेस के राष्ट्रीय अध्यक्ष सांसद अशोक तंवर का मानना है कि कई व्यक्तियों में टैलेंट तो होता है, किंतु उन्हें प्लेटफार्म नहीं मिल पाता. दीपेंद्र सिंह हुड्डा ने कहा कि आने वाला कल युवकों का ही होगा. राहुल जी की मेहनत रंग ला रही है.

इस कार्यक्रम को पहले से दो दिनों तक चलाने की घोषणा की गई थी. मसूरी के नामी होटलों में आरामगाह मिलते ही इन नेताओं ने दूसरे दिन के कार्यक्रम को निरस्त करके दूर के गांवों से दूसरे दिन आए सैकड़ों युवकों की आशाओं पर पानी फेर दिया. राजनीति में किसको क्या मिलेगा, यह तो अभी दूर की कौड़ी लग रही है, किन्तु जिस तरह कांग्रेस के नेताओं ने युवक कांग्रेस में हर स्तर पर अपने लोगों की फौज के समायोजन की रणनीति बना ली है, वह उत्साहवर्धक नहीं कहा जा सकता. कुल मिलाकर देखें तो अपने समर्थकों के साथ दिल्ली दरबार से आए नेताओं को ख़ुश करने की कार्रवाई को पहले चरण में तो सफलता मिल गई, लेकिन सवाल यह भी है कि टैलेंट हंट में युवकों को दुखी होने से बचाने के लिए अगर समय रहते कुछ नहीं किया गया तो फिर भविष्य अंधकारमय ही है.

आशंका तो यहां तक जताई जा रही है कि चित्रकूट में आयोजित युवा नेतृत्व चिंतन शिविर की तरह ही यह योजना भी कांग्रेस के फसादी नेताओं के मकड़जाल में फंस कर रह जाएगी. उत्तराखंड में सभी पांच संसदीय सीटों पर सफलता मिलने के साथ कांग्रेस को 51 विधानसभा क्षेत्रों में सफलता मिली है. हालांकि ठीक एक महीने के भीतर कपकोट विधानसभा क्षेत्र के उपचुनाव में कांग्रेस प्रत्याशी तीसरे स्थान पर पहुंच गया. इसने उत्तराखंड की गुटबाज़ी में माहिर नेताओं को आईना ही दिखाया है.

इससे एक बात तो साफ हो गई है कि इस सूबे में भी लोकसभा की जो सभी पांच सीटें कांग्रेस को मिलीं, उसका सीधा श्रेय राहुल गांधी की मेहनत और ईमानदारी, मनमोहन सिंह की चरित्रप्रधान राजनीति और सोनिया के आचरण को जाता है. वैसे, भारतीय राजनीति में जिस तरह युवा नेतृत्व को सामने लाने की कोशिश की जा रही है, उसको ग्रहण लगने से बचाने की भी आवश्यकता है.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

बिहार सरकार को क्यों बनाना पड़ा महादलित आयोग?

फोटो– पीटीआई

गौरी शंकर नागदंश

अगर यह सच है कि नीतीश सरकार ने दलित वोटों के एक हिस्से के लिए ही महादलित आयोग का गठन किया है, तो एक सच उससे भी बड़ा है. वह यह कि महादलित आयोग बनने से जिन्हें विशेष अवसर प्राप्त होंगे, उनके इस विशेष अधिकार की लड़ाई क्रीमीलेयर वाले यानी प्रतिष्ठित दलित नेताओं ने अपना हक़ मारे जाने के डर से कभी लड़ी ही नहीं.

शुरुआती दौर में सरकार ने विकसित जाति के नाम पर चार जातियों को महा–दलित से अलग रखा. इनमें पासवान, रविदास, पासी और धोबी रखे गए. फिर दलीय राजनीतिक दबाव अथवा जातीय व्याकरण ने दुबारा पासी और धोबी को भी महादलित का ताज पहना दिया. सरकार के अनुसार दलितों में सवर्ण बन चुके पासवान और चमार से अलग सभी दलितों को विशेष अवसर की ज़रूरत है. महादलित से अलग की जा चुकी जातियां दुसाध एवं चमार पहले के विशेष अवसरों से ही अपने को आर्थिक और बौद्धिक रूप से सबल कर चुकी हैं. अब बारी डोम, मेहतर, हलालखोर, मुसहर जैसों की है. ये सामाजिक पायदान में सबसे नीचे निवास करने वाले हैं और कहीं–कहीं तो जानवरों से भी गई बीती स्थिति में जीने वाले इस समुदाय के 31 प्रतिशत के सर्वांगीण विकास यानी दलितों को अंत्योदय की आवश्यकता है. इतना सही है तो महादलित से अलग की गई दो जातियों को ऐतराज नहीं होना चाहिए. सरकार को अब भी महादलित से अलग किए गए संत रविदास के वंशजों यानी चमारों को सड़क के किसी कोने पर पुराने जूते में कील ठोकने से मुक्ति का मार्ग खोजना होगा. मृत गाय–बैलों की चमड़ी उतारने की मशीन बिहार के गांव– शहरों में लगानी पड़ेगी. पूर्व मुख्यमंत्री लालू प्रसाद के कार्यकाल में ताड़ के पेड़ों को मुफ्त करके पुलिसिया ज़ोर–जबर्दस्ती से ताड़ी बेचने वालों को निजात दिलाई गई. तभी इस जाति के बोट बैंक पर पहला हमला बोला गया. नीतीश सरकार ने बिहार विधान सभा में पहले दलित अध्यक्ष के रूप में इस जाति से आए उदय नारायण चौधरी को स्थापित कर नहले पर दहला मारने की कोशिश की है. फिर भी आज तक इस समुदाय के अधिसंख्य पासी अपनी दुकानों को बार की शक्ल नहीं दे पाए हैं. उनकी दुकानें आज भी ताड़ीखाने के रूप में जानी जाती हैं. बहुतेरे लोगों को तो आज भी अपनी रोजी–रोटी के लिए सड़क के किनारे ताड़ी बेचते देखा जा सकता है. नेताओं से लेकर नौकरशाहों तक के सफेद कपड़ों पर कलफ लगाने वाले धोबियों को भी बेहतर घाट, छोटी ही सही दुकानें और बाक़ी सुविधाएं मुहैया करानी पड़ेगी. स्व. जगलाल चौधरी पासियों के पहले नेता रहे. वह श्रीकृष्ण सिंह की बिहार की पहली सरकार में मंत्री भी रहे. उन्होंने अपने मंत्रित्व काल में पूर्ण नशाबंदी की वकालत ही नहीं की थी, बल्कि इसे लागू करने की पहल भी की थी.

अंग्रेजों की विश्वसनीयता और नज़दीकियों से पासवानी की संज्ञा पाए पासवानों (दुसाध) को दलित वर्ग की सभी जातियां अपना प्रतिद्वंद्वी मानती रही है. बाक़ी जातियों को यह भी लगता रहा कि यह जाति अपनी दबंगता, जातिबल और थोड़ी बहुत बौद्धिकता द्वारा अरसे से लाभ में रही है. इस लिहाज़ से दलितों की सभी जातियां इस जाति को सवर्ण के आसपास अथवा उसके संस्कारों से पूरित पाती हैं. जबकि चौकीदारों, दफादारों, मज़दूरों, गाड़ीवानों, सामंतों के लठैतों से लेकर दूसरे के खेतों की बटाईदारी करने वाली इस जाति में अधिक पढ़े–लिखों का प्रतिशत अन्य दलितों से अधिक होने तथा कुछ संपन्न होने के बावजूद भी इस जाति के 60 फीसदी लोग अभी भी लाचार हैं. वैसे भी अल्प स्वजातीय वोटों वाले नीतीश कुमार को लंबी पारी के लिए जातीय वोटों का जुगाड़ करना ज़रूरी था. बिहार में पहले से ही पासवान और रविदास में 36 का आंकड़ा रहा है. स्व. जगजीवन राम ही ऐसे नेता रहे हैं, जिन्हें दोनों जातियों के वोट मिलते रहे. राम विलास पासवान के उदय के बाद पासवान वोटों को वह अपनी तरफ़ खींच ले गए. पिछले डेढ़ दशक से रविदास वोटों के तारणहार रमई राम रहे. लेकिन उनके इस वोट पर अब हाथी (मायावती) का कब्ज़ा हो गया है. मुशहरों के वोट अब तक तो लालू के पाले में जाता रहा. भाजपा ने इस समुदाय के रामजी ऋषिदेव को बिहार सरकार में अपने कोटे से राज्य मंत्री बनाया है. वहीं नीतीश सरकार ने इसी समुदाय के विश्वनाथ ऋषि को नव स्थापित महादलित आयोग का अध्यक्ष एवं उसी जाति के बबन रावत को सदस्य चुना है. साथ ही काफी अरसे से मुशहरों के अधिकारों की लड़ाई लड़ने वाले जीतन राम मांझी को सरकार ने कल्याण मंत्री पद से नवाजा है. महादलितों के हितैषी की अपनी छवि पुख्ता करने के लिए इस सरकार को महादलितों के बच्चों के लिए शिक्षा को अनिवार्य बनाते हुए पहली कक्षा से ही दोगुनी या इतनी छात्रवृत्ति की व्यवस्था करनी चाहिए. सरकार को विशेष योजनाएं तैयार करनी चाहिए (मुख्य अनुशंसा में संशोधन करते हुए), क्योंकि महादलितों में अधिकांश जातियां ऐसी हैं, जिन्हें रोज़ कुंआ खोदना है और रोज़ पानी पीना है. वैसे में दलितों की समस्याओं के निदान के लिए राज्य सरकार से लेकर केंद्रीय और अंतरराष्ट्रीय अनुदान पाने वाली संस्थाओं की बिहार में कमी नहीं है. लेकिन यदा–कदा मुखर रूप से पद्मश्री सुधा वर्गीज तथा डॉ. आरआर कनौजिया की संस्था *हम दलित* ही यदा–कदा ज़मीन पर कुछ करती नज़र आती है. वैसे महादलित आयोग के गठन को राजनैतिक पार्टियों में पूर्व से हाशिए पर डाल दिए गए दलित नेताओं के दिन बहुरने के संकेत के रूप में भी लिया जा सकता है. अब वैसे योग्य दलित नेताओं की दलों में निश्चित पूछ बढ़ जाएगी जो या तो शिथिल कर दिए गए थे या स्वयं किन्हीं कारणों से किनारा कर चुके थे. महादलित आयोग गठन के बाद से ही अख़बारों में प्राय: उनके साथ अत्याचारों की घटनाएं बढ़ने लगी हैं. इसे सामंती सोच के लोगों की प्रतिक्रिया के रूप में लिया जाए या महादलितों में महादलित आयोग के गठन के बाद बढ़ी प्रतिरोध की शक्ति के रूप में, यह अलग बात है. हालांकि सरकार को अगर महादलितों की सही में सुध है और वह सचमुच उन्हें पारंपरिक कष्टों से मुक्ति दिलाना चाहती है, तो सरकार को उत्तर प्रदेश की मायावती सरकार की तरह दलित एक्ट को बिहार में बहाल करना चाहिए तथा दलित थानों को चुस्त तथा सक्रिय बनाने की प्रक्रिया शुरू कर देनी चाहिए.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

महिला आरक्षण पर उबलती सियासत

शरद यादव

मुलायम सिंह यादव

गिरिजा व्यास

सभी फोटो– *प्रभात पाण्डेय*

जिसकी जितनी हिस्सेदारी, उसकी उतनी भागीदारी...तो फिर आधी आबादी का आरक्षण 50 फीसदी क्यों नहीं, 33 फीसदी ही क्यों? फ़िलहाल देश की सियासत इसी मुद्दे पर उबल रही है. महिला आरक्षण विधेयक को सौ दिनों में पारित कराने की सरकार द्वारा तय की गई अवधि खत्म होने के क़रीब है. विधेयक की राह में रोड़े अब भी कम नहीं हैं. वैसे तो राजनीतिक दल महिला सशक्तीकरण का ढिंढोरा पीटते नहीं अघाते. हां, अमल करने की बारी आती है तो एक नया शिगूफा छोड़ देते हैं और फिर बहस–मुसाहिबों में उलझ कर असली मुद्दा दम तोड़ देता है. हैरानी तो इस बात पर भी होती है कि जो काम पंचायत और नगरपालिका स्तर पर इतनी आसानी से संपन्न हो गया, वह विधानमंडल और संसद के स्तर पर हक़ीक़त में क्यों नहीं बदल रहा? केंद्र में एचडी देवगौड़ा की सरकार के बाद से ही महिला विधेयक को पारित कराने का वादा हर सरकार करती रही है. मनमोहन सिंह की सरकार ने इस बार सौ दिनों के अंदर इस विधेयक को पारित कराने का वादा किया है. पर सवाल यह है कि यही सरकार पिछले पांच सालों के शासनकाल में यह काम क्यों नहीं करा सकी थी? और तो और, इस पर राजनीतिक सर्वसम्मति बनाने की भी गंभीर कोशिश नहीं हुई. मज़े की बात तो यह कि जब यह बिल पहली बार संसद में पेश किया गया था, तब भी वही लोग इसका विरोध कर रहे थे जो आज कर रहे हैं. ज़ाहिर है, इन विरोधियों को मनाना मुश्किल है. ऐसे में इनकी अनदेखी करते हुए ही इस बिल को पारित कराना होगा. क्या ऐसा करने के लिए मनमोहन सिंह की सरकार तैयार है? ऐसा करना सरकार के लिए मुमकिन है? ये ऐसे चंद सवाल हैं, जिनका जवाब फ़िलहाल सरकार के पास भी नहीं है.पिछले साल मई में जब क़ानून मंत्री हंसराज भारद्वाज ने राज्यसभा में महिला विधेयक पेश किया था, उस वक़्त अभूतपूर्व हंगामे की स्थिति थी. हाथापाई की नौबत तक आ गई थी. क़ानून मंत्री हंसराज भारद्वाज के हाथ से समाजवादी पार्टी के कुछ नेताओं ने विधेयक की प्रति छीनने की भी कोशिश की. सदन खचाखच भरा था और प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह तथा पीठासीन उप सभापति पीजे कुरियन भी हक्के–बक्के हो कर इस शर्मनाक तमाशे को देख रहे थे. एक तरफ़ भारद्वाज को बचाने के लिए उनके सहयोगी मंत्री अंबिका सोनी, कुमारी शैलजा और विलास मुत्तमवार आसपास घेरा डाले हुए थे तो दूसरी तरफ़ समाजवादी पार्टी के अबू आजमी उन से विधेयक छीनने की कोशिश में थे. इस अराजक माहौल में ही कानून मंत्री हंसराज ने महिला विधेयक राज्यसभा में पेश कर दिया. देश की राजनीति ने एक लंबा सफ़र तय किया है. बहुतेरी तब्दीली हुई. पर नहीं बदली, तो मानसिकता. देश के राजनेता आज भी पुरानी मानसिकता से परे नहीं सोच पा रहे हैं. इसका मतलब तो यही हुआ कि हमारे राजनेता निचले स्तर पर तो महिलाओं को राजनीति में शिरकत करने की इजाज़त दे सकते हैं पर सत्ता के उच्च स्तर पर उन्हें महिलाओं की हिस्सेदारी स्वीकार्य नहीं है. इसलिए भी यह पैंतरा आजमाया जा रहा है कि आरक्षण में भी पिछड़ी महिलाओं के लिए कोटा होना चाहिए. आरक्षण का विधेयक पारित न हो, इसके लिए हर नुस्ख़े पर अमल किया जा रहा है. जद–यू अध्यक्ष शरद यादव के अपने दांव हैं. कहते हैं कि अगर मौजूदा स्वरूप में विधेयक पारित हुआ तो वह ज़हर खा लेंगे. अब कोई शरद यादव से पूछे कि क्या उनकी बेटी को भी आरक्षण की ज़रूरत है? या मुलायम सिंह और लालू प्रसाद के बच्चे भी आरक्षण के मोहताज़ हैं? ये नेता वंचित तबके की महिलाओं के लिए कोटे के भीतर कोटा चाहते हैं तो अभी तक ये हाथ पर हाथ धरे क्यों बैठे थे? उन्होंने इसके लिए कोई अभियान क्यों नहीं छेड़ा? क्यों नहीं लोकसभा चुनाव में बड़े पैमाने पर अपने दलों से महिलाओं को टिकट दिया? उत्तर प्रदेश के पूर्व मुख्यमंत्री कल्याण सिंह को तो यह आरक्षण कुछ लोगों की साज़िश लगती है. राजद अध्यक्ष लालू यादव फरमाते हैं कि आरक्षण के ज़रिए अभिजात्य वर्ग मासूम महिलाओं को आगे कर के शासन और व्यवस्था पर क़ब्ज़ा कर लेना चाहता है. यह सचमुच हास्यास्पद बात है. महिला आयोग की अध्यक्ष गिरिजा व्यास कहती हैं कि जो भी राजनेता महिला विधेयक का विरोध कर रहे हैं उन्हें इस बात से कोई मतलब नहीं होता कि पंचायत या शहरी निकाय स्तर पर क्या हो रहा है. उन्हें तो सत्ता के सर्वोच्च केंद्र से मतलब है. बस वहां उनका ही राज होना चाहिए. महिला आरक्षण होने से देश की 272 सीटें आरक्षित हो जाएंगी और उन सीटों पर चुनाव लड़ना पुरुषों के लिए वर्जित हो जाएगा. जब 1992 में स्थानीय स्तर पर महिलाओं को 33 फीसदी आरक्षण देने का क़ानून बनाया गया था, तब एक सामाजिक क्रांति सी आई थी. आज 20 साल बाद उस फ़ैसले का सकारात्मक असर साफ तौर पर देखा जा सकता है. दरअसल जो नेता इस विधेयक का विरोध कर रहे हैं उन्हें इस बात का डर सता रहा है कि अगर आरक्षण मौजूदा स्वरूप में पारित हो गया तो संसद और विधान मंडल में उच्च जातियों की महिलाओं का आधिपत्य हो जाएगा. जबकि ये नेता चाहें तो अपनी पार्टी से ज़्यादा से ज़्यादा वंचित और दलित महिलाओं को टिकट देकर उन्हें संसद और विधानमंडल में पहुंचा सकते हैं. लिहाजा, ज़रूरत इस बात की है कि राजनीतिक दल इस विधेयक का विरोध करने के बजाय आत्ममंथन करें. कितनी अजीब बात है कि लोकसभा और राज्य विधानसभाओं में महिलाओं को आरक्षण दिए जाने की कवायद शुरू हुए लगभग चौदह साल हो गए, पर विरोध में कोई फ़र्क़ नहीं पड़ा है. अगर कुछ बदला है तो वह है सरकारें और विधेयक पेश करने वाले क़ानून मंत्रियों का चेहरा. इस बार वीरप्पा मोइली के कंधों पर इस विधेयक को पेश करने की ज़िम्मेदारी है. हालांकि उनकी राह आसान नहीं दिखती. महिला आरक्षण संबंधी इस विवादास्पद विधेयक से संबद्ध संसद की पिछली स्थायी समिति के एक सदस्य ने बताया कि कोई भी पुरुष सांसद अपनी जगह किसी भी महिला को देने के हक़ में कतई नहीं है. इस सदस्य ने साफ तौर पर कहा कि किसी भी सदस्य से यह उम्मीद लगाना बेमानी है कि वह किसी भी ऐसे तरीक़े का समर्थन करेगा जो पलट कर उसी पर भारी पड़े. ज़्यादातर सांसद इसी पक्ष में हैं कि महिलाओं को अगर समायोजित करना है तो लोकसभा की 543 सीटों की क्षमता बढ़ाई जाए. यहां तक की सत्ता पक्ष के नेता भी इस विधेयक के मसले पर खुलकर सरकार के साथ खड़े नहीं हो रहे. कांग्रेस के एक वरिष्ठ नेता कहते हैं कि अगर महिलाओं के साथ मौजूदा सीटों को बांटने के बजाए लोकसभा की सीटें बढ़ाने का विकल्प हो तो संसद के इस बजट सत्र में ही इस विधेयक को पारित किया जा सकता है. संसद का बजट सत्र शुरू होने ही वाला है. साथ ही सरकार की इस मसले पर अग्निपरीक्षा भी. सब अब इस इंतज़ार में हैं कि इस मुद्दे पर सरकार क्या रुख़ अपनाती है, ताकि महिला विधेयक पारित हो जाए और उसे मुंह की न खानी पड़े.

रूबी अरुण

ruby.chauthiduniya@gmail.com

महिलाओं को महज़ 33 फीसदी ही क्यों?

बहुजन शक्ति पार्टी की राष्ट्रीय महासचिव और डॉ. भीमराव अंबेडकर सेवादल की राष्ट्रीय अध्यक्ष अर्चना सिंह सरकार से यह जानना चाहती हैं कि महिलाओं को सरकार महज़ 33 फीसदी ही आरक्षण क्यों दे रही है? आख़िरकार किस आयोग ने इसकी सिफ़ारिश की है? जब आबादी में महिलाएं कम नहीं तो आरक्षण में समझौता क्यों? दलित–पिछड़ी जाति की महिलाओं के लिए आरक्षण में कोटा सरकार क्यों नहीं देना चाहती? क्या सरकार नहीं चाहती कि इस जमात की महिलाएं देश की नीति–निर्धारक बनें? इन सवालों को लेकर इनकी पार्टी मिल्ली काउंसिल के साथ मिल कर संसद का घेराव भी करेगी. 27 जून को इसकी रणनीति मावलंकर हाल में विशाल सभा कर तय की जाएगी. जिसमें यह प्रस्ताव भी पारित किया जाएगा कि सरकार विशेष कोटा तो दे ही, साथ ही यह भी साफ करे कि उस कोटे में विभिन्न पिछड़ी और दलित जातियों की महिलाओं के लिए कितने–कितने प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान रखा गया है.

मायावती जी, ध्यान दीजिए

सप्तसागर झील को ख़त्म करने की साज़िश

सप्तसागर की ज़मीन पर हक़ रखने वाले बड़ा स्थान की हवेली

सप्तसागर झील

भारत की राजनैतिक, धार्मिक और सामाजिक स्थिति में अयोध्या का महत्व किसी से छुपा नहीं है. यही वह स्थान है, जहां से राम के नाम पर शुरू हुई राजनीति की वजह से हिंदुस्तान की केंद्रीय और प्रादेशिक सत्ता में भूचाल आ गया. धर्म के नाम पर भाजपा की राजनीति राममंदिर के निर्माण को लेकर केंद्रीय सत्ता में चमकी. इसी अयोध्या में भगवान राम के अस्तित्व से जुड़ा और कई एकड़ क्षेत्र में फैली सप्तसागर नाम की झील आज शासन, प्रशासन और भू-माफियाओं के कारण अपनी पहचान खो चुकी है. इसको बचाने के लिए अयोध्या में कोई महंत या भाजपा का कोई संगठन भी नहीं आया. यदि सप्तसागर का नाम आज के अयोध्या में लिया जाए तो वहां सप्तसागर कॉलोनी के अलावा कुछ नहीं मिलेगा. सप्तसागर के नाम से जो ख़ाली ज़मीन पड़ी है, उसमें भी अधिकतर को बड़े रसूख वालों के नाम पट्टा कर दिया गया है. लोग मकानों के निर्माण में लगे हैं. इस काम में विकास प्राधिकरण भी पीछे नहीं है. ज़मीन का सौदा बाद में होता है और उसका नक़्शा पहले बन जाता है. धर्म के ठेकेदारों को इस सप्तसागर के अस्तित्व को ख़त्म करने के लिए मोटी रक़म मिल रही है, और इसीलिए आज तक किसी ने इस धरोहर को बचाने की पहल नहीं की.

सप्तसागर का ऐतिहासिक महत्व

इतिहास में वर्णित है कि मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के राज्याभिषेक के अवसर पर इसमें सातों समुद्रों और समस्त तीर्थों का जल डाला गया, तब से इसका नाम सप्तसागर पड़ा. पुराणों में ऐसा भी वर्णित है कि सीता नित्य अपनी सहचरियों के साथ कनक भवन से निकल कर सप्तसागर में स्नान कर इसके तट पर विराजमान काली जी की पूजा करती थीं. राज परिवार के लोगों का जब विवाह होता था तो उनकी मौरी सप्तसागर में ही विसर्जित की जाती थी. *अयोध्या महात्म्य* पुस्तक के अनुसार श्री अयोध्यानगरी के मध्य भाग में रमणीय सप्तसागर नाम का कुंड है जो इच्छित फल देने वाला है. हर पूर्णिमा को समुद्र स्नान करने से जो पूर्ण फल प्राप्त होता है, वही फल इस कुंड में किसी भी दिन स्नान करने से मिलता है. यहां की प्रसिद्ध वार्षिक यात्रा आश्विन शुक्ल पूर्णिमा को होती है.

कौन है सप्तसागर की ज़मीन का असली मालिक

आज़ादी के बाद गांवों में ज़मींदारी व्यवस्था तो ख़त्म हो गई थी लेकिन शहरी क्षेत्रों में ज़मींदारी व्यवस्था नहीं ख़त्म हो सकी. अयोध्या में सप्तसागर पर अयोध्या स्थित बड़ा स्थान तथा राजगोपालाचारी मंदिर का आधिपत्य रहा. सप्तसागर की सुरक्षा इन्हीं दो मंदिरों के कर्ताधर्ताओं के विवेक पर निर्भर रही. जब तक धर्मनगरी में धार्मिक आंदोलन चलते रहे, तब तक सप्तसागर झील के रूप में विद्यमान रहा और अयोध्या का पानी उसमें इकट्ठा होता रहा. यह लगता रहा कि सप्तसागर की विरासत ज़िंदा है.

आज हालात बदल गए हैं. इस ज़मीन पर दलालों एवं भूमाफियाओं की नज़र लगभग तीन वर्ष पहले लगी थी. उन्होंने बड़ा स्थान तथा राजगोपालाचारी मंदिरों के महंतों को प्रलोभन देना शुरू किया. साथ ही दलालों ने मोटी कमाई के लालच में ग्राहकों को जुटाना शुरू किया. ये दलाल स्वयं तो पट्टा करते नहीं, केवल ग्राहकों को ढूंढते हैं और पट्टे का काम बड़ा स्थान तथा उससे जुड़े पट्टेदार स्वयं करते हैं, इन महंतों का कार्य भी इस तरह से चलता है कि किसी को यह शक़ न हो कि पट्टा कब और कैसे हो गया. इसकी भनक किसी को न लगे, इसके लिए इन दोनों मंदिरों में ज़मीन के रख-रखाव व ख़रीद-फ़रोख्त के लिए अलग विभाग हैं. ज़मीन की बिक्री कितने में होती है, सौदा कौन करता है, इससे इन महंतों को मतलब नहीं है.

सप्तसागर के तीन बड़े मालिक

अयोध्या स्थित सप्तसागर के प्रथम मालिक के रूप में बड़ा स्थान के महंत बिंदुगाद्याचार्य जी, दूसरे राजगोपालाचारी मंदिर के महंत और ट्रस्टी नारायणदास खत्री का परिवार है. वर्तमान में ट्रस्टीशिप की ज़िम्मेदारी सांसद निर्मल खत्री और उनके छोटे भाई राज कुमार खत्री पर है. राजनीति में रहने के बावजूद ट्रस्टी नारायणदास खत्री के परिवार वालों द्वारा अब तक कोई क़दम नहीं उठाया गया.

उपरोक्त तथ्यों की गहन छानबीन करने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है कि लगभग 50 हेक्टेयर क्षेत्र में फैले सप्तसागर का अस्तित्व 2001 के पहले दोनों मंदिरों के महंतों और पट्टेदारों द्वारा बचाए रखा गया, जबकि राजस्व अभिलेखों में सप्तसागर का नाम कहीं भी अंकित नहीं था. सवाल यह भी है कि कैसे ऐतिहासिक तथ्यों में सप्तसागर के महत्व का वर्णन किया गया. सरकार द्वारा सप्तसागर स्थान को नगर पालिका अयोध्या में क्यों महत्व दिया गया इतना ही नहीं इस भू-भाग में राजगोपालाचारी मंदिर के नाम गाटा संख्या 69/4 रकबा 0.708 एयर मोहाल तथा 69 जी रकबा 0.126 एयर मौजा मीरापुर डेरा वीवी के नाम दर्ज़ है. शेष ज़मीन पर बड़ा स्थान तथा छोटे पट्टेदारों का हक़ था. अब सबसे बड़ी समस्या शासन प्रशासन के सामने यह खड़ी है कि सप्तसागर के नाम को तो वह मिटा नहीं सकती. सुप्रीम कोर्ट तथा हाई कोर्ट ने भी तालाबों, झीलों तथा समुद्रों पर किसी भी प्रकार के अतिक्रमण तथा भवन निर्माण को अवैधानिक करार देते हुए समस्त जिलाधिकारियों तथा प्रशासनिक अधिकारियों को निर्देश दिया कि ऐसे स्थलों से अतिक्रमणों को हटाया जाए और इनकी सुरक्षा की जाए. सप्तसागर के मामले में ऐतिहासिक धरोहर होते हुए भी प्रशासनिक अधिकारियों के ढुलमुल रवैये के चलते दलालों एवं भू-माफियाओं के कारण उसका अस्तित्व पूरी तरह ख़त्म हो चुका है

दलालों की भूमिका

मोटी रक़म के लालच में दलालों को इस धरोहर से कोई मतलब नहीं है, उनको तो सिर्फ़ पैसा चाहिए. जब सप्तसागर के मालिक लोग अपनी ही विरासत को ख़त्म करने पर लगे हैं तो इन दलालों को धार्मिक धरोहर से क्या मतलब. सप्तसागर की अस्मिता को मिटाने एवं ग्राहकों को जुटाने का काम करने वालों में अयोध्या स्थित बाबू टेलर के नाम से प्रसिद्ध सादिक अली, भाजपा नगर पालिका सभासद घनश्याम दास, पुरुषोत्तम आचार्य तथा उमेश त्यागी का नाम क्षेत्र में प्रमुख रूप से लिया जा रहा है. इन दलालों का मुख्य काम है, जितनी जल्दी हो सके ग्राहकों को पटा कर अपना कमीशन पक्का कर लिया जाए, और अगर कभी सप्तसागर की बात शासन और प्रशासन के ज़िम्मे जाए तो मालिक और ग्राहक भुगतें. वैसे इनके कामकाज से प्रशासनिक अधिकारी भी बिना मेहनत के मालामाल हो रहे हैं, तभी तो विकास प्राधिकरण के सचिव से बात करने पर सप्तसागर के नाम पर उन्होंने कहा कि अगर सप्सागर के स्थान पर निर्माण हो रहा है तो इसकी जानकारी हमें नहीं है. नक़्शे में 69 जी.आई. नंबर संदेह के घेरे में सबको लाकर खड़ा कर सकता है, हम अपने स्तर पर इसकी जांच कराएंगे और सप्तसागर की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को देखते हुए जो भी हमारी ज़िम्मेदारी है, वह करेंगे.

सप्तसागर में प्रशासन की पहल

सप्तसागर के महत्व को समझते हुए 1997-98 में कल्याण सिंह के मुख्यमंत्रित्व काल में सप्तसागर के विकास के लिए पर्यटन विभाग द्वारा आठ लाख रुपये शासन को भेजे गए थे. इसके बाद फ़ैजाबाद जिले में कई प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा सप्तसागर की सुरक्षा हेतु कई कार्य किए गए, लेकिन राजनीतिक पहुंच रखने वाले महंतों तथा दलालों के प्रभाव ने उनके उद्देश्यों पर पानी फेर दिया है.

किन जनप्रतिनिधियों के समय में सप्तसागर मिटने की तरफ़ बढ़ा

यदि अयोध्या व फ़ैजाबाद के प्रमुख जनप्रनिधियों की बात की जाए तो भाजपा सांसद विनय कटियार, भाजपा विधायक लल्लू सिंह और बसपा सांसद मित्रसेन यादव अब तक की राजनीति में प्रमुख रूप से क़ाबिज़ रहे हैं. इन जनप्रतिनिधियों के शासन काल में ही सप्तसागर के अस्तित्व को मिटाने के इस गोरखधंधे की नींव पड़ी. लेकिन धार्मिक धरोहर को बचाने में इन्होंने किसी भी प्रकार की दिलचस्पी नहीं दिखाई. लल्लू सिंह वर्तमान में भी भाजपा से अयोध्या के विधायक हैं. वैसे तो धर्म के नाम पर भाजपा मर मिटने को तैयार होती है, लेकिन सप्तसागर के अस्तित्व को बचाने के लिए विधायक लल्लू सिंह द्वारा पहल नहीं की गई. धर्म के ठेकेदारों ने व्यक्तिगत उपलब्धि हेतु राजनीति उन्हीं स्थानों पर की जहां से उन्हें फ़ायदा मिलने वाला था. अब यदि देखा जाए तो ज़मींदारी व्यवस्था के तहत रामजन्म भूमि भी किसी मंदिर की धरोहर रही, लेकिन विश्वव्यापी आंदोलन करके धर्माचार्यों ने सरकार द्वारा उसे अधिग्रहीत कराया. सप्तसागर के लिए कोई भी ऐसा प्रयास इन धर्म के ठेकेदारों ने नहीं किया है. वहीं वर्तमान सांसद निर्मल खत्री से वार्ता करने पर सप्तसागर के बारे में उन्होंने कहा कि तत्कालीन जन प्रतिनिधियों को इसकी रक्षा करनी चाहिए थी. वह आश्वासन देते हैं कि उनसे जो हो सकेगा, वह करेंगे.

क्या कहते हैं सप्तसागर की ज़मीन के संरक्षक

यहां के महंत बिंदुगाद्याचार्य का कहना है

बड़ा स्थान के महंत का कहना है कि इस स्थान की कितनी संपत्ति है यह हमें पता ही नहीं. ज़मीन की देख-रेख के लिए हमारे यहां अलग विभाग बना है. बहुत से लोगों ने मंदिर की ज़मीन पर क़ब्ज़ा कर लिया तथा कुछ दूसरों के क़ब्ज़ों में है. रही बात सप्तसागर के बचाव की, तो ऐतिहासिक दृष्टिकोण से इस धरोहर का महत्व है, लेकिन यह ज़मींदारी व्यवस्था के कारण पट्टे की भूमि है. राजस्व अभिलेखों में कहीं भी सप्तसागर का जिक्र नहीं है. इसी कारण पट्टेदार अपनी ज़मीन को बेच रहे हैं. सरकार अगर सप्तसागर को बचाने की पहल करे तो वह पल भर में सब कुछ कर सकती है और हम लोग भी चाहते हैं कि सप्तसागर का अस्तित्व मिटने न पाए, लेकिन सरकार के पहल न करने के कारण लोग अपनी ज़मीन को बेच रहे हैं और धीरे-धीरे सप्तसागर का स्थान बड़े-बड़े भवन और महल ले लेंगे.

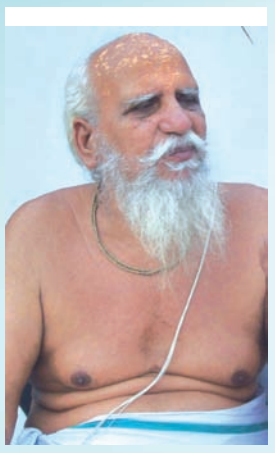

राजगोपाल मंदिर के महंत कौशल किशोर के अनुसार

सप्तसागर ऐतिहासिक और धार्मिक विरासत के रूप में महत्वपूर्ण स्थान रखता है. मुग़ल काल में जाफ़र हुसैन नामक मुस्लिम शासक को सप्तसागर-जो कि लगभग 500 हेक्टेयर भू-भाग में स्थित था- का ज़मींदार बनाया गया. अंग्रेजों के शासन में यह व्यवस्था ज्यों की त्यों बनी रही. बाद में जाफ़र हुसैन से सप्तसागर को बड़ा स्थान तथा राजगोपालाचारी मंदिर के महंतों ने मीरापुर डेरा वीवी को ख़रीदा. समय बदलता गया लेकिन आज़ादी के पूर्व तथा बाद में भी यह झील के रूप में जाना जाता रहा. हालांकि राजस्व अभिलेखागार में यह सप्तसागर के नाम से अंकित नहीं हो सका, लेकिन 69 जी.आई. नंबर नक़्शे में अंकित रहा. इसमें न तो प्लॉटों का आबंटन था और न ही अलग से दोनों मंदिरों का भाग बंटा दिखा. कालांतर में बड़ा स्थान के राघवदास तथा राजगोपाल ने इस सप्तसागर के बड़े-बड़े भू-भागों पर अपने मंदिर से जुड़े सेवकों को रोजी-रोटी चलाने के लिए कृषि हेतु ज़मीन उपलब्ध कराई. आज़ादी के बाद खेती करने वाले इन काश्तकारों का नाम उन ज़मीन के अंश पट्टेदार के रूप में आ गया. हालांकि ज़मीनी नक़्शे में 69 जी.आई. नंबर में कोई प्लाटिंग राजस्व विभाग द्वारा नहीं अंकित की गई. सप्तसागर में बड़ा स्थान का हिस्सा काफी था और पुराने महंतों ने अपने समय में इसके अस्तित्व को बचाए रखा, लेकिन 2001 के बाद से ही बड़ा स्थान के द्वारा इस ज़मीन का सौदा दलालों एवं भू-माफियाओं के माध्यम से शुरू किया गया, और 2009 तक बड़ा स्थान ने अपनी ज़मीन पूरी तरह से बेच दी. वहीं राजगोपालाचारी की ज़मीन के अंश पर भी दलालों की नज़र गड़ी है लेकिन राजगोपाल मंदिर ऐतिहासिक सप्तसागर स्थल को बचाने का हर संभव प्रयास करेगा और हर ज़रूरी क़दम उठाएगा. महंत कौशल किशोर ने यह भी विशेष रूप से कहा कि अयोध्या के महंत अपनी त्याग की संस्कृति को भूलकर व्यक्तिवाद की भौतिकता में फंसते हुए महायोगी से महाभोगी बनते जा रहे हैं. महंतों ने अपने ज़मीर को बेच पूरी अयोध्या को शर्मसार कर दिया है. शासन प्रशासन में बैठे अधिकारी यह कहते हैं कि सप्तसागर नाम का अभिलेख राजस्व में नहीं मिलता और यह ज़मीन ज़मींदारी क़ब्ज़े की है. मीरापुर डेरा वीवी में यदि सप्तसागर नाम की कोई चीज़ नहीं थी तो नगर पालिका अभिलेख में सप्तसागर का उल्लेख क्यों है. इस पर प्रशासनिक अधिकारियों का ध्यान नहीं गया और विकास प्राधिकरण के अधिकारी मोटी रक़म के लालच में इस धरोहर को मिटाने के लिए नक़्शा- नफीशी तैयार करने में लगे रहे.

प्रमुख पट्टाधारक अयोध्या प्रसाद पंडा कहते हैं

1956 में राजगोपाल मोहाल जाफ़र हुसैन के मीरापुर डेरा वीवी से पांच बीघा सात बिस्वा ज़मीन पर पट्टा मिला खेती करने के लिए, पर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु उक्त ज़मीन को हमने बेच दिया. राजस्व अभिलेखों में सप्तसागर नाम का कोई उल्लेख नहीं और यह पूरी तरह ज़मींदारी के अधीन रही, इसमें हमारा क्या दोष है.

सप्तसागर विकास समिति के अध्यक्ष एस.एन. बाग़ी के अनुसार

अयोध्या की इस विरासत पर जब बड़ा स्थान के द्वारा दलालों के माध्यम से ज़मीन को बेच कर आवासी पट्टों में तब्दील किया जाने लगा, तब से इसे बचाने के लिए हमारी समिति लगातार संघर्ष करती रही. यहां के महंतों और प्रशासनिक अधिकारियों को इस बावत जानकारी भी दी गई. अधिकारियों ने यह कहते हुए अपना पल्ला झाड़ा कि उक्त सप्तसागर का राजस्व अभिलेखों में कहीं भी उल्लेख नहीं है और यह ज़मींदारों की ज़मीन है. इसके मालिक जो चाहे कर सकते हैं. वैसे इस ज़मीन की सौदेबाजी में प्रशासन के लोगों ने भी कोई कसर नहीं छोड़ रखी है. विकास प्राधिकरण भी आंखें बंद करके इस ऐतिहासिक धरोहर को मिटाने के लिए रातों-रात आवासीय पट्टों की ज़मीन पर निर्माण हेतु नक़्शे बनाता चला गया. जिले के अधिकारियों से लेकर प्रदेश शासन तक से इस विरासत को बचाने के लिए गुहार लगाई गई, लेकिन कहीं से इसे बचाने की पहल नहीं की गई. हम लोग असहाय होकर सारा तमाशा देखते रहे और चाह कर भी कुछ नहीं कर सके. धर्म की रक्षा के नाम पर भाजपा विश्वव्यापी आंदोलन करने के लिए राम सेतु का नाम उछाल कर अस्तित्व विहीन को अस्तित्व में लाने के लिए जुटी है, राम जन्म भूमि मुद्दे पर जमकर राजनीति हुई है लेकिन भाजपा के किसी भी नेता ने सप्तसागर को बचाने के लिए कोई प्रयास नहीं किया है. उल्टे इस ज़मीन की दलाली में मोटी रक़म कमाते हुए पूरी अयोध्या को शर्मसार कर रहे हैं.

[आर.के यादव/बी.डी.शर्मा]

feedback.chauthiduniya@gmail.com

कहीं मुंबई को महंगी तो नहीं पड़ेगी मेट्रो?

तेज़ी से भागते मुंबई शहर के लोगों के लिए अब तेज़ी से भागने वाली सवारी लाने की तैयारी हो रही है. मुंबई मेट्रो का काम ज़ोर-शोर से चल रहा है. सरकारी वादे और दावे मुंबई की एक नई सूरत गढ़ने की बात कर रहे हैं. बात स्वागत करने योग्य है. जनता के लिए विकास और सुविधा के मेल से बेहतर क्या हो सकता है. इससे भी इंकार नहीं किया जा सकता कि हर विकास की क़ीमत चुकानी पड़ती है. सवाल यह है कि क्या यह क़ीमत इस इस विकास के मुक़ाबले कहीं बहुत ज़्यादा तो नहीं. क्या सुविधा की यह रेल दुविधा का भी कारण बनेगी. क्या मेट्रो की सवारी मुंबई को बहुत महंगी पड़ रही है? इन्हीं सवालों के जवाब ढूंढ़ती रपट-

शिरीष खरे

मेट्रो रेल मुंबई की नई जीवन-रेखा होगी? सरकार जो भी कहे, लेकिन सिक्के के दूसरे पहलू को पलटकर देख लेना चाहिए. दूसरे पहलू से तीन सवाल उभरते हैं. पहला, इसके पीछे किन ताक़तों के और कैसे हित जुड़े हैं? दूसरा, इससे तरक़्क़ी के मुक़ाबले कितनी तबाही होगी? तीसरा, यह दावा कितना सच्चा है कि मेट्रो से ही शहर का ट्रांसपोर्ट सिस्टम बेहतर होगा?

एक तीर से दो शिकार

मुंबई मेट्रो के साथ कई आशंकाएं भी दस्तक दे रही हैं. प्रोजेक्ट के नोटिफिकेशन को ही देखें तो इसमें विकास करने वालों को यह छूट दी गई है कि वह *निर्माण ख़त्म होने के बाद बची हुई ज़मीन को अपने मुनाफे के लिए बेच* सकते हैं. इसके अलावा उन्हें *सेंट्रल लाइन के दोनों तरफ़ आरक्षित 50 मीटर ज़मीन को दोबारा विकसित* करने की भी छूट मिलेगी. इससे कॉरपोरेट ताक़तों को शहर की *सबसे क़ीमती ज़मीनों को हथियाने और यहां से व्यापारिक गतिविधियां* चलाने की छूट ख़ुद-ब-ख़ुद मिल जाएगी. मुंबई मेट्रो पूरी तरह से सरकारी प्रोजेक्ट नहीं है. इसमें प्राइवेट कंपनी सबसे ज़्यादा निवेश करेगी. ज़ाहिर है, सबसे ज़्यादा मुनाफा भी कंपनी ही कमाएगी, न कि सरकार यानी पब्लिक. दूसरे, अधिसूचना के हिसाब से शहर का ख़ास भू-भाग कंपनी की पकड़ में आ जाएगा. यहां से उसे अपना कारोबारी एजेंडा पूरा करने में सहूलियत होगी. यानी मेट्रो से मुनाफा भी कमाओ, मेट्रो से निकलने वाली ज़मीन से कारोबार भी फैलाओ. इसे कहते हैं एक तीर से दो शिकार!!

इन दिनों कई कंपनियां रीयल इस्टेट, आईटी और रेल के विकास के नाम पर शहर की ज़मीन को हथियाना चाहती हैं. हाल ही में बदनाम हुई *सत्यम* और उसकी सहयोगी कंपनी *मेटास* ने हैदराबाद के आसपास की हज़ारों एकड़ ज़मीन हथिया ली थी. *मेटास* तो 1,200 करोड़ रुपये की हैदराबाद मेट्रो रेल में भी शामिल थी, लेकिन *सत्यम* में 7,800 करोड़ रुपये के घोटाले के बाद *मेटास* को जांच एजेंसियों के हवाले कर दिया गया. *मेटास* के आउट होने के बाद अनिल अंबानी की *रिलायंस- इंफ्रास्ट्रक्चर* अब हैदराबाद मेट्रो में भी बोली लगाने को बेताब है. वैसे भी *रिलायंस-इंफ्रास्ट्रक्चर* मुंबई के साथ-साथ दिल्ली मेट्रो का काम तो कर ही रही है. अगर दाल में कुछ भी काला नहीं है, तो सरकार मेट्रो से जुड़े अहम तथ्यों से पर्दा हटाए. *सूचना के अधिकार* के तहत कुछ सामान्य-सी सूचनाएं मांगने पर उसने तुरुप का इक्का फेंका- *इस क़िस्म की सूचनाएं साझा करने से राष्ट्र को ख़तरा हो सकता है.*

छिन जाएंगे रोज़गार

पिछले महीने शहर की झोपड़ियों से हज़ारों लोग निकले और यशवंत राव चव्हान सेंटर पहुंचे. यहां *शहरी विकास विभाग* ने मेट्रो फेज-2 के लिए दो दिनों की जनसुनवाई रखी थी. लोगों की भारी संख्या को देखकर बड़े अधिकारी चौंक खड़े हुए. न केवल संख्या बल्कि लोगों के कई सवालों ने भी उन्हें घेर लिया. जनसुनवाई में 19 बातों का पालन करना होता है, लेकिन प्रशासन ने चुप्पी साधी, फिर थोड़ी-सी जगह निकाली और निकल भागा. इसी तरह नवंबर, 2008 में भी प्रदेश सरकार ने प्रोजेक्ट से जुड़ी आपत्तियां मांगी थीं. इसके बाद उसे आपत्तियों से भरे 15,000 पत्र मिले. तब 8,000 लोग मेट्रो के विरोध में सड़क पर उतरे. तब भी सरकार ने लोगों के विरोध को नजरअंदाज़ कर दिया था. ऐसे में शहर के बीचोंबीच विरोध का एक नारा सुनाई देने लगा है- *मेट्रो रेल क्या करेगा, सबका सत्यानाश करेगा!*

मेट्रो से 15,000 से ज़्यादा परिवार उजड़ेंगे. इससे लाखों लोग बेकार हो जाएंगे. कार शेड डिपो बनाने में 140 एकड़ से भी ज़्यादा ज़मीन जाएगी. इससे जनता कॉलोनी, संजय नगर, एकता नगर, आज़ाद कम्पाउंड, गांधी नगर, केडी कम्पाउंड और लालजीपाड़ा जैसी बस्तियों के नाम नए नक़्शे से मिट जाएंगे. तब यहां के हर मोड़ से गुजरने वाले सुस्त क़दम रस्ते और तेज़ क़दम राहें हमेशा के लिए रुक जाएंगी.

मेट्रो की दूसरी फेज़ कुल 32 किलोमीटर लंबी होगी. यह उत्तरी मुंबई के चारकोप से बांद्रा होते हुए पश्चिम में मानखुर्द तक जाएगी. इस रास्ते में 27 स्टेशन आएंगे. पूरी परियोजना 2012 तक ख़त्म होगी. परियोजना के दूसरे चरण में 7,000 करोड़ रुपए ख़र्च होंगे. कुल निवेश में रिलायंस-इंफ्रास्ट्रक्चर 74 फीसदी का हिस्सेदार बनेगा.

इस तरह एक तो बड़े इलाक़े की पूरी आबादी बेघर हो जाएगी. दूसरे, आज यहां से हज़ारों हाथों को काम मिलता है, कल इन हाथों के थम जाने से रोज़गार का संकट गहरा जाएगा. कई निवासी तो 40-45 साल से यहीं रहते आ रहे हैं. इन्होंने रोज़मर्रा के मामूली धंधों से एक बड़ा बाज़ार तैयार किया है. उत्पादन के नज़रिए से देखा जाए तो धारावी के मुक़ाबले यहां का बाज़ार काफी बड़ा है. इस बाज़ार से 10,000 लोगों की घर-गृहस्थियां आबाद हैं. यह इलाक़ा कई सुंदर आभूषण और सजावटी चीज़ों को बनाने के लिए मशहूर है. यहां से कई चीज़ों को दुनियाभर में भेजा जाता है. इन चीज़ों को बनाने और भेजने में 15,000 महिलाएं शामिल हैं. यहां कई लोग बेकरी और फुटकर सामान बेचने से भी जुड़े हैं. कुल मिलाकर शहर का यह हिस्सा सामाजिक और आर्थिक गतिविधियों का मज़बूत ताना-बाना है. अगर यह टूटा तो रहने और जीने के कई तार टूट जाएंगे. शहर की रफ़्तार बढ़ाने वाले बहुत सारे पंख बिखर जाएंगे.

कार शेड डिपो बनने से *पोईसर* नदी भी अपना वजूद खो देगी. साथ ही इससे लगा *नेशनल पार्क* प्रभावित होगा. अभी तक *पर्यावरण पर होने वाले असर का मूल्यांकन* भी नहीं हो सका है. *पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, 1986* के तहत ऐसा होना ज़रूरी है. यह कब होगा, तारीख़ कोई नहीं जानता.

शहर का ट्रांसपोर्ट सिस्टम

हाल ही में कुछ ऐसी रिपोर्ट जारी हुई हैं जो ट्रांसपोर्ट के नज़रिए से मेट्रो को ठीक नहीं मानतीं. आईआईटी, दिल्ली के ट्रांसपोर्ट जानकारों ने एक अध्ययन में पाया कि मुंबई में 47 प्रतिशत लोग या तो पैदल चलते हैं, या साइकिल से. इसी तरह 11 फीसदी जनता कार या मोटर साइकिल चलाती है. इसके बाद बस और रिक्शा से चलने वाले लोगों का प्रतिशत घटा दें तो ट्रेन से चलने वाले कुल 21 प्रतिशत ही बचते हैं, लेकिन ट्रांसपोर्ट के बजट का आधे से ज़्यादा हिस्सा मेट्रो के लिए ख़र्च किया जा रहा है. जहां तक लंबी दूरी की बात है तो मेट्रो बेहद महंगा प्रोजेक्ट हैं. इसमें घनी आबादी वाली बस्तियों के विस्थापन से होने वाले नुकसान को भी जोड़ दिया जाए तो पूरा प्रोजेक्ट बेहद ख़र्चीला हो जाता है. ट्रांसपोर्ट के जानकार सुधीर बदानी के मुताबिक-*मुंबई में ट्रेन के पुराने सिस्टम को दुरूस्त बनाने और बस-ट्रांसपोर्ट को विकसित करने से राहत मिलेगी. जहां मेट्रो के पूरे प्रोजेक्ट में 65,000 करोड़ रुपये ख़र्च होंगे, वहीं 200 किलोमीटर बस-ट्रांसपोर्ट तैयार करने में सिर्फ़ 3,000 करोड़. इसलिए बस का रास्ता सस्ता, बेहतर और व्यावहारिक है.* स्लमडाग *मिलेनियेर* को *गोल्डन ग्लोब* और *ऑस्कर* अवार्ड मिलने के बाद मुंबई को तीसरी दुनिया के सबसे दिलचस्प शहरों में से एक कहा जा रहा है. यहां एक तरफ़ अंधेरी की उमंग में डूबी रातें हैं तो दूसरी तरफ़ धारावी जैसा कस्बाई इलाक़ा है. एक तरफ़ बेहतरीन रेस्टोरेंट, बार और नाइट-क्लब हैं तो दूसरी तरफ़ खुली झोपड़ियां, कच्ची-पक्की गलियां और टूटी-फूटी नालियां हैं. इतनी विविधता वाले शहर की योजनाएं जितनी ज़्यादा असंतुलित होगी, नुकसान भी उसी अनुपात में होगा. मुंबई मेट्रो में एक हिस्से को फ़ायदा पहुंचाने के लिए दूसरे हिस्से से क़ीमत वसूली जाएगी. इस तरह रिलांयस जैसे घराने और अमीर बनने का ख्वाब पूरा करेंगे, लेकिन एक बड़े ख्वाब की आंधी से हज़ारों छोटे-छोटे ख्वाब हवा हो जाएंगे.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

एक कचौरी के लिए ख़ून बेच देते हैं मासूम

राजीव कुमार शर्मा

एक ओर तो विश्व रक्तदान दिवस पर लोग स्वेच्छा से ग़रीबों के लिए अपना रक्तदान करते हैं. दूसरी ओर, राजस्थान में लाल पत्थर के लिए प्रसिद्ध करौली जिले के हिंडौन क़स्बे में हैवान डॉक्टरों का मामला भी उजागर हुआ है. लहू के सौदागर बने ये डॉक्टर मासूम बच्चों के जिस्म से ख़ून निकाल लेते थे. मामले के उजागर होने से लोग हैरान थे, तो पुलिस अपराधियों की धर-पकड़ की कोशिश कर रही थी. मानवता को शर्मसार करने वाले इस प्रकरण में भगवान का दर्जा प्राप्त डॉक्टरों के हैवान की शक्ल अख्तियार करने की कहानी है. हिंडौन क़स्बे में निजी नर्सिंग होम चलाने वाले डॉक्टर 10 से 15 साल के मासूम बच्चों को खाने के लिए जोधपुरी कचौरी का लालच देकर अपने यहां ले आते थे. महज़ एकाध कचौरी के बदले में वे बच्चों के शरीर से ख़ून निकाल लेते और मरीज़ों को ऊंची दरों पर बेचकर अपनी जेब गरम करते थे. इन्होंने क्षेत्र में एक गिरोह सक्रिय किया हुआ था, जो गली मोहल्लों में खेलते छोटी उम्र के बच्चों को कचौरी खिलाने के बहाने बहलाकर ले आता और इसके बाद डॉक्टर इन मासूम बच्चों का ख़ून निकाल कर रख लेते थे. बाद में वह बच्चों को दिलासे के तौर पर कहते थे कि इससे कुछ फ़र्क़ नहीं पड़ता. गिरोह के सदस्य इसके बाद बच्चों को कभी एक तो कभी दो कचौरी खिलाकर किसी से कुछ न कहने की बात कहकर भगा देते. हिंडौन क़स्बे के राजगिरीश और तिरुपति नर्सिंग होम के संचालक डॉ. गिरीश अग्रवाल और डॉ. नवाब सिंह ने ऐसे कुछ गुर्गे पाल रखे थे, जो आस-पास के ग्रामीण इलाक़ों में घूम कर ऐसे बच्चों की तलाश करते जो ग़रीब और अनपढ़ जैसे दिखाई पडते. उन्हें खाने-पीने की चीज़ों का लालच देकर ये दलाल अपने साथ नर्सिंग होम ले आते. वहां बच्चों को ख़ून लेने वाले कर्मचारी के हवाले कर अपना कमीशन ले कर चलते बनते.

ये कर्मचारी बच्चों को मानसिक रूप से तैयार कर इन्हें ख़ून देने को किसी भी क़ीमत पर राज़ी कर लेते थे. अगर कोई बच्चा विरोध करता या अपना आक्रोश दिखाता तो उसे अलग से 5-10 रुपये देकर उसका मुंह बंद कर दिया जाता था. राजगिरीश नर्सिंग होम के पास चाय की रेहड़ी चलाने वाले महेश कोली का हालांकि कुछ और ही कहना है. उनके अनुसार इन बच्चों को नशे की लत थी और वे ख़ुद ही अपना ख़ून देने आते थे. पुलिस की अब तक की जांच में क़रीब 35 ऐसे बच्चे सामने आए हैं जो इन नर्सिंग होमों में अपना ख़ून दे चुके हैं. लोगों का मानना है कि यह संख्या अधिक भी हो सकती है. बहुत से बच्चे और अभिभावक पुलिसिया कार्रवाई के डर से सामने नहीं आना चाहते हैं. मामले के प्रकाश में आते ही इसकी गंभीरता को भांप पुलिस अधीक्षक सरवर ख़ान आनन-फानन में हिंडौन पहुंचे. पुलिस अधीक्षक ने एक ओर जहां विभाग को जल्द से जल्द कड़ी कार्रवाई करने को कहा, तो ख़ुद भी ऐसे बच्चों से मिले. एक बच्चे को पूछताछ के बाद जब उन्होंने प्यार से अपनी गोदी में उठाया तो मासूम बोल पड़ा-*अंकल आप भी कचौरी खिलाने ले चल रहे हो क्या.* भावुक हुए सरवर ख़ान ने कहा कि ऐसा जघन्य अपराध करने वाले उन्होंने अपने सेवाकाल में अब तक नहीं देखे हैं. अब तक हुई कार्रवाई में डॉ. गिरीश अग्रवाल सहित पांच को पुलिस ने हिरासत में ले लिया है, जबकि दूसरे डॉ. नवाब सिंह फरार हो गए हैं. पुलिस उसकी सरगर्मी से तलाश कर रही है. क़स्बे के लोगों का कहना है कि सब कुछ पुलिस की मिलीभगत के बग़ैर संभव नहीं था. इसकी शिकायत भी की गई थी, मगर कुछ नहीं हुआ. मामले के खुल जाने के बाद ही कार्रवाई की कोशिश की जा रही है. लोगों में पुलिस और प्रशासन को लेकर भी आक्रोश है. दूसरी तरफ़ यदि देखा जाए तो ऐसे मामलों के प्रकाश में आने पर कुछ समय के लिए प्रशासनिक कार्रवाई होती दिखाई पड़ती है और बाद में मामले को रफा-दफा कर दिया जाता है. प्रदेश के चिकित्सा मंत्री का तो इस पूरे कांड पर हास्यास्पद बयान आया है. उनके मुताबिक यह निजी क्षेत्र का मामला है और इसमें जब तक जांच में गड़बड़ी सामने नहीं आ जाती, तब तक सरकार कुछ नहीं कर सकती. यह बयान क्या किसी जवाबदेह सरकार का लगता है? ग़रीब मां-बाप के बच्चों के जिस्म से ख़ून निकालकर बेचने के इस प्रकरण ने एक बार फिर से यह साबित कर दिया है कि चिकित्सा जैसे पेशे में ऐसे तत्वों ने अपनी पैठ बना ली है जिनके कारण पूरे पेशे की प्रतिष्ठा ही दांव पर लग गई है. हिंडौन के इन नर्सिंग होमों का यह प्रकरण प्रदेश में कोई नया नहीं है. राजधानी जयपुर में प्रदेश के सबसे बड़े सवाई मानसिंह अस्पताल के बाहर ऐसे दलालों की कोई कमी नहीं है, जो मजबूर लोगों का ख़ून बेचकर अपनी जेबें गरम कर रहे हैं. इनके ख़िलाफ़ कोई कार्रवाई करने तक की हिम्मत नहीं जुटा पा रहा है. वहीं भरतपुर के ब्लडबैंक के ख़िलाफ़ भी रक्तदाताओं ने आवाज़ उठाई है. जनता ट्रस्ट बनाने को लेकर लगातार संघर्ष कर रही है, लेकिन इनकी सुनने वाला कोई नहीं है. कर्मचारी खुलेआम ख़ून की बिक्री कर रहे हैं. ऐसे मामलों से ऐसा लगता है कि पानी की बूंदों को तरसते राजस्थान में लोगों के ख़ून से होली खेली जा रही है, जहां ग़रीब और मजबूर लोग ख़ून बेचकर पेट भर रहे हैं तो दूसरी तरफ़ ख़रीदार इसे दूसरे मजबूरों को महंगे दामों में बेचकर अपनी जेबें भर रहे हैं.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

नदियों को भी बेचने को तैयार सरकार

वंदना शिवा

कुछ वर्ष पहले ताज़ा पेयजल के मुद्दे पर एक सम्मेलन का आयोजन किया गया था, जिसमें क़रीबन 130 देशों ने शिरकत की थी. इसमें निष्कर्ष यह निकला था कि बहुत जल्द वह वक़्त भी आएगा, जब पानी का वितरण पाइपलाइन और टैंकरों के ज़रिए किया जाएगा और 21वीं सदी में पानी ही युद्धों का सबब बनेगा. फ़िलहाल क़रीबन एक अरब 30 करोड़ लोगों को पेयजल मुहैया नहीं है और लगभग दो अरब 40 करोड़ लोगों को सफाई का पानी उपलब्ध नहीं है. यह मौन ख़तरा लगभग 6000 लोगों की रोज़ाना जान लेता है. भविष्य के आसार तो यह भी दिखते हैं कि 2015 तक जनसंख्या की बढ़ोतरी और प्रवास लगभग एक अरब साठ लाख लोगों को पानी के लिए संघर्ष पर मजबूर करेगा. दो अरब लोगों को सफाई के लिए पानी की ज़रूरत महसूस होगी. पानी के लिए मानवता की मांग दंग करने वाली हद तक यानी 30 फीसदी तक बढ़ेगी.

भारत में दूसरे देशों की तुलना में हालात और भी ख़राब हैं, हम यहां केवल कुछ ज्वलंत उदाहरण देंगे, जिससे पानी की कमी होने के सबूत बिल्कुल स्पष्ट हो जाते हैं. उदाहरण के लिए–

1. दिल्ली–हरियाणा सीमा पर रोहतक रोड पर पानी की सख्त कमी की वजह से दंगे हुए. इसमें तीन पुलिस अधिकारियों के साथ ही लगभग 15 लोग घायल हुए और कई आते–जाते वाहनों को नुकसान पहुंचा.

2. पूर्वी दिल्ली के गोकुलपुरी में पानी को लेकर हुए दंगे ने सांप्रदायिक रूप ले लिया. इसमें दो लोग घायल हुए.

3. राजकोट में लोगों ने एक मृतक के शरीर को वैसे ही छोड़ दिया, जैसे ही उन्होंने पानी के टैंकर को देखा. कारण स्पष्ट था. अंतिम संस्कार तो बाद में भी किया जा सकता है, लेकिन पानी के टैंकर को नहीं छोड़ा जा सकता है.

4. उत्तर भारत में कोई भी विवाह समारोह किसी वधू के कुआं पूजन के बिना पूरा नहीं माना जाता. फिलहाल दिल्ली में कोई कुआं न मिलने की वजह से लड़कियां नगर निगम के टैंकर की ही पूजा करती हैं.

5. राजस्थान के अजमेर में तीन बच्चे लालटेन के गिरने से फैली आग में जल गए. उस गांव में आग बुझाने के लिए पानी मौजूद ही नहीं था.

6. बड़े शहरों में पानी के लिए झगड़ा लगभग रोज़ की बात है, जहां लोगों को अपनी रातों की नींद हराम कर सुबह तीन या चार बजे उठकर नगर निगम के नलकों से पानी भरना पड़ता है. हालात यहां तक ख़राब हो गए कि जामनगर में 1999 में पुलिस को पानी के लिए दंगा करते लोगों पर गोली चलानी पड़ी थी, जिसकी वजह से तीन लोगों की मौत हो गई थी.

7. पानी के लिए दंगों की ख़बर आम हो गई है.

संयुक्त राष्ट्र ने भी कई बार चेतावनी दी है कि दुनिया के सभी देशों को पानी का, ख़ासकर पेयजल के इंतज़ाम के सभी प्रबंध करने चाहिए. इसके अभाव में दुनिया के कई देशों में युद्ध सरीखी स्थिति बन जाएगी. हमारे पुरातन ग्रंथों जैसे महाभारत में भी कहा गया है कि खाने से बड़ा उपहार तो पानी का है.

सबसे चिंताजनक बात यह है कि हमारी दुनिया का 97 प्रतिशत हिस्सा समुद्र में है, बर्फ में 2.5 फीसदी और इसका अर्थ यह है कि कुल मिलाकर केवल .5 फीसदी हिस्सा ही हमारे काम आ सकता है. यह छोटा सा हिस्सा भी कुल मिलाकर बेहद असमान तरीक़े से वितरित है, चूंकि इसका भी बड़ा हिस्सा झीलों में है, जो कुल मिलाकर कनाडा और अमेरिका के सीमाई हिस्सों में है. पानी के असमान बंटवारे की वजह से ही अब कई देशों में ख़तरनाक हालात पैदा हो गए हैं.

हमारे लिए यह भी सबसे चिंता की बात है कि भारत में हालात बेहद ख़राब हैं. संयुक्त राष्ट्र के एक अध्ययन के मुताबिक पूरे एशिया में केवल 3000 क्यूबिक मीटर की ही प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष उपलब्धता है. यह किसी भी महादेश के लिए सबसे कम आंकड़ा है. भारत में तो यह उपलब्धता 2500 क्यूबिक मीटर है. बढ़ती आबादी और ग़लत जल प्रबंधन ने हालात को और बिगाड़ा ही है.

यह दयनीय नहीं तो और क्या कि लगभग 20 करोड़ भारतीयों को स्वच्छ और गुणवत्ता वाला पेयजल उपलब्ध नहीं है. यह भी अनुमान लगाया जा रहा है कि देश के जलस्रोतों में लगभग 80 फीसदी प्रदूषित हो चुके हैं.

बावजूद इसके, ज़रूरत और लालच में फ़र्क़ नहीं किया जा रहा है. इसी का बहाना लेकर निजीकरण के भी समर्थन में लोग आवाज़ उठाने लगे हैं. इसके पीछे जो तर्क दिए जाते हैं, वह यह कि ग़रीब लोगों को तो वैसे भी पानी के लिए अधिक पैसे देने पड़ते हैं, क्योंकि उनको नगर निगम के नलकों की जगह निजी व्यापारियों से ही पानी ख़रीदना पड़ता है. इस भेदभाव को दुरुस्त किया जा सकता है, अगर ज़िम्मेदारी को तय किया जा सके. इसी के बहाने विश्व बैंक और अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष की शह पर भारत में भी पानी के निजीकरण की कोशिश ज़ोर–शोर से शुरू हो गई है. निजीकरण के साज़िश की बात करने से पहले यह जानना ज़रूरी है कि भारत में ख़तरा किस हद तक पहुंच चुका है. इसके लिए कुछ उदाहरण ही ज़रूरी होंगे.

1. भारत की शहरी आबादी के 38.38 फीसदी नागरिकों को पीने का पानी मुहैया नहीं है. हमारे यहां एक लाख से भी अधिक गांव ऐसे हैं, जिनको शुद्ध पेयजल मुहैया नहीं है.

2. अकाल से प्रभावित होने वाले इलाक़ों की संख्या में बढ़ोतरी हो रही है.

3. यह अनुमानित है कि अगर भारत की तीन फीसदी ज़मीन पर भी पानी के संग्रहण का प्रबंध किया जाए, तो देश में होने वाली बरसात का लगभग एक चौथाई हिस्सा वहां संग्रहित हो सकता है.

4. भू–जल का लगातार ख़तरनाक तरीक़े से दोहन किया जा रहा है. ख़ासकर, आंध्र प्रदेश, गुजरात, हरियाणा, कर्नाटक, पंजाब, राजस्थान, तमिलनाडु और उत्तरप्रदेश में तो हालात बेहद गंभीर हैं.

5. और, लगभग साढ़े चार करोड़ लोग पानी की गुणवत्ता की वजह से ही बीमार पड़ते हैं. पानी में फ्लोराइड, लोहा, नाइट्रेट और आर्सेनिक जैसे ख़तरनाक पदार्थों की मौजूदगी ही इसका कारण है.

भारत में नदियों को बेचने की साज़िश

विश्व बैंक और आईएमएफ के इशारे पर भारत में भी पानी को बड़ी कंपनियों और बहुराष्ट्रीय निगमों को बेचा जा रहा है. यहां तक कि नदियों को भी नहीं बख्शा गया. गुणवत्ता और सबको उपलब्धता के नाम जो ख़तरनाक खेल हो रहा है, वह पूरी तरह से ग़ैर–बराबरी और जनता के साथ अन्याय करने वाला है. यह किसी एक राज्य में या शहर में नहीं हो रहा है. उत्तर से लेकर दक्षिण और पूर्व से लेकर पश्चिम तक भारतीय जनता को आसानी से मिलने वाला पानी विदेशी कंपनियों को बेचा जा रहा है, जो बदले में उससे सैकड़ों गुणा मुनाफा कमाएंगी. ख़ुद हम उस पानी को ऊलजलूल दाम पर ख़रीदेंगे और बदले में हमें पानी भी नसीब नहीं होगा. या होगा, तो प्रदूषित और ज़हरीला. वैसे तो, हम आपको राज्यवार ब्योरे भी समयानुसार मुहैया कराएंगे, लेकिन पहले देख लें कि किस तरह नदियों की धारा को भी महज़ कुछ लोगों की स्वार्थ को पूरा करने का साधन बना दिया गया है.

छत्तीसगढ़

छत्तीसगढ़ के दुर्ग में गांव वाले शिवनाथ नदी के सहारे अपनी ज़िंदगी बसर करते थे. चाहे मौसम अकाल का हो या बाढ़ का. उनको फ़सलों के लिए पानी, मछली, और पशुओं के लिए चारा सब कुछ इसी से मिलता था. अब वह पुरानी बात हो गई है. अभी भी नदी के किनारे घाट बने दिखते हैं, लेकिन गांव वाले नदी की लगभग 27 किलोमीटर धारा का इस्तेमाल नहीं कर सकते. वजह, इसे रेडियस वाटर लिमिटेड नाम की कंपनी को बेच दिया गया है, अब शिवनाथ नदी के पानी के वितरण पर इसी कंपनी का अधिकार है. अचरज की बात यह कि इस व्यवस्था की समीक्षा भी 22 वर्षों बाद की जाएगी.

तो, फिर इसका पानी जा कहां रहा है? दुर्ग शहर के क़रीब के बोराई औद्योगिक क्षेत्र के इलाक़ों में. ज़ाहिर है कि सरकार ने कंपनी को समझौते के तहत निजी डैम बनाने का भी अधिकार दे दिया. साथ ही, समझौते में सरकार को चालीस लाख लीटर पानी रोज़ाना ख़रीदना ज़रूरी है. ऐसा नहीं होने की सूरत में सरकार को लगभग सवा लाख रुपये रोज़ाना कंपनी को अतिरिक्त देने होंगे. इस पूरी योजना से प्रभावित होने वाले गांवों की संख्या बीस के क़रीब हैं. इनमें नदी की ऊपरी धारा के पास रहने वाले प्रभावित गांव पांच हैं. यहां के निवासियों को पूरी तरह कंपनी की दया पर निर्भर रहना पड़ता है. कंपनी की इजाज़त के बिना वे घाटों पर नहा भी नहीं सकते, अपने कपड़े नहीं धो सकते या पशुओं को पानी नहीं पिला सकते. उनकी खेती–किसानी भी मौसमी बरसात पर ही निर्भर है, क्योंकि डैम पर कंपनी का एकाधिकार है और उसकी मर्ज़ी ही क़ानून. सरकार के कानों पर जूं भी नहीं रेंग रही.

कुएं में ही भंग पड़ी है

बात केवल छत्तीसगढ़ या मध्यप्रदेश की ही नहीं है. पूरे देश में ही पानी को निजी हाथों में दिया जा रहा है. यहां तक कि पवित्र मानी जाने वाली नदी गंगा को भी नहीं छोड़ा जा रहा है. बेंगलुरू, इंदौर से लेकर तमिलनाडु और गुजरात के कई शहरों और पूर्वोत्तर के इलाक़ों में भी यह लूट जारी है. यहां तक कि जनता के ज़ोरदार विरोध के बावजूद सोनिया विहार (दिल्ली) प्लांट का काम पूरा कर दिया. दिल्ली जल बोर्ड इसका जो वितरण कर रही है, वह फ़ायदेमंद तो कतई नहीं कहा जा सकता. ऊपर से इसका असमान बंटवारा भी किया जा रहा है. दिल्ली की पॉश कॉलोनियों और अतिमहत्वपूर्ण इलाक़ों में तो पानी की कोई कमी नहीं, जबकि दूर–दराज़ के इलाक़े और तथाकथित पिछड़े इलाक़े पानी की कमी से दो–चार होते रहते हैं. बस एक उदाहरण इसे साफ कर देगा. अगर लुटियन जोन, कैंटोनमेंट बोर्ड और करोलबाग इलाक़े की बात करें, तो इन इलाक़ों में क्रमशः 462 लीटर प्रति व्यक्ति, 509 लीटर प्रति व्यक्ति और 337 लीटर प्रति व्यक्ति था, जबकि महरौली में यह आंकड़ा 29 लीटर प्रति व्यक्ति और नरेला में 31 लीटर प्रति व्यक्ति था. बताते चलें कि ये आंकड़े भी कुछ साल पहले के हैं.

कहना न होगा कि सरकार की जनविरोधी और ग़रीबों के ख़िलाफ़ की जा रही कारगुजारियों को पूरी तरह सामने लाने के लिए न जाने कितने पन्ने काले करने होंगे. फिर भी, इनके कारनामों को देखकर तो बस यही कहा जा सकता है कि धरती और सागर को बांटने के बाद बस अब ईश्वर का ही बंटवारा बाक़ी है. वह भी तो आंशिक तौर पर हो ही चुका है.

(लेखिका सुप्रसिद्ध पर्यावरणविद हैं)

feedback.chauthiduniya@gmail.com

विश्व बैंक और आईएमएफ के भारत में पानी से संबंधित प्रोजेक्ट

1. कर्नाटक ग्रामीण जल आपूर्ति और सफाई परियोजना–कुल रक़म मिली, 151.6 मिलियन अमेरिकी डॉलर – परियोजना का उद्देश्य, वाटर सप्लाई एंड सैनिटेशन–सक्रिय अवस्था में

2. कर्नाटक जल विभाजक विकास परियोजना–रक़म मिली, 100.4 मिलियन अमेरिकी डॉलर–उद्देश्य, खेती– काम जारी.

3. केरल ग्रामीण जल आपूर्ति और वातावरणीय सफाई परियोजना–रक़म मिली, 65.5 मिलियन अमेरिकी डॉलर–उद्देश्य, जल आपूर्ति एवं सफाई –काम जारी.

4. जिला ग़रीबी उन्मूलन परियोजना–रक़म मिली, 100.48 मिलियन डॉलर–उद्देश्य, खेती–काम जारी.

5. तमिलनाडु शहरी विकास परियोजना–धन मिला, 105 मिलियन अमेरिकी डॉलर–उद्देश्य, शहरी विकास–काम जारी.

6. उत्तर प्रदेश विविध कृषि परियोजना–रक़म मिली,129.9 मिलियन डॉलर उद्देश्य, कृषि–काम जारी.

7. आंध्र प्रदेश सिंचाई परियोजना–रक़म मिली, 325 मिलियन अमेरिकी डॉलर–उद्देश्य, कृषि–सक्रिय अवस्था में.

8. आंध्र प्रदेश हजार्ड मिटिगेशन एंड इमरजेंसी साइक्लोन रिकवरी प्रोजेक्ट – रक़म मिली,150 मिलियन अमेरिकी डॉलर– उद्देश्य, बहुद्देशीय– सक्रिय अवस्था में.

9. उत्तर प्रदेश ग्रामीण जल आपूर्ति और वातावरणीय सफाई– रक़म मिली 59.6 मिलियन अमेरिकी डॉलर–उद्देश्य, जल आपूर्ति और सफाई–सक्रिय अवस्था में.

10. उड़ीसा वॉटर रिसोर्सेज कंसॉलिडेशन प्रोजेक्ट– धन मिला 290.9 मिलियन अमेरिकी डॉलर–उद्देश्य, कृषि– सक्रिय अवस्था में.

11. बॉम्बे सीवेज डिस्पोजल प्रोजेक्ट–कुल रक़म मिली, 192 मिलियन अमेरिकी डॉलर–उद्देश्य,जल आपूर्ति एवं सफाई–काम जारी.

12. तमिलनाडु वाटर रिसोर्सेज कंसॉलिडेशन प्रोजेक्ट–रक़म मिली, 282.9 मिलियन अमेरिकी डॉलर–उद्देश्य, कृषि–सक्रिय अवस्था में.

13. हाइड्रोजन प्रोजेक्ट–धन मिला, 142 मिलियन अमेरिकी डॉलर– उद्देश्य, पर्यावरण– सक्रिय अवस्था में.

14. मद्रास जल आपूर्ति परियोजना–रक़म मिली, 275.8 मिलियन अमेरिकी डॉलर–उद्देश्य, जल आपूर्ति और सफाई– सक्रिय अवस्था में.

15. उत्तर प्रदेश वाटर सेक्टर रिस्ट्रक्चरिंग प्रोजेक्ट– रक़म मिली,65.5 मिलियन अमेरिकी डॉलर–उद्देश्य, कृषि–सक्रिय अवस्था में.

एम जे अकबर

पश्चिम बंगाल : अगली बार ज्वालामुखी

वाम मोर्चे ने बंगाल में भले ज़मीन खो दी हो, पर क्या किसी ने इस पर ध्यान दिया था? कांग्रेस ने 1962 और 1967 में हक़ीक़त को महसूस नहीं किया और क्या कुछ देर पहले तक किसी ने इसकी दूसरी व्याख्या की थी.

वर्ष 1962 में वामपंथी राष्ट्रवादी दृष्टिकोण से ग़लत थे. वजह यह कि उसी साल अक्टूबर में हुए त्रासद युद्ध में चीन के आक्रामक रवैए की उन्होंने निंदा नहीं की थी. ज्योति बसु ने अपने कॉमरेडों के साथ कुछ महीने जेल में भी काटे थे. पार्टी ने आंतरिक तौर पर अपनी ग़लती को सुधारा. चीन समर्थक अतिवादी अपने ढंग से क्रांति करने के लिए पार्टी से अलग हो गए. नक्सलियों (यह नाम उत्तरी बंगाल के छोटे से गांव नक्सलबारी के कारण हुआ) ने माओत्से तुंग को अपना भी चेयरमैन घोषित कर दिया. यह अलग बात है कि माओ इस बात से ख़ुश थे या नहीं, कह नहीं सकते.

वामपंथी आधिकारिक तौर पर टूट चुके थे. टूटा हुआ धड़ा सीपीआई (एम) अधिक संतुलित था. यह कोलकाता के कॉलेज स्ट्रीट की पहली उत्तर-स्वाधीनता पीढ़ी के मनमाफिक रूढ़ था और उनके नौकरीपेशा अभिभावकों के लिए उनकी नौकरी ख़त्म करने पर तुले नक्सलियों की तुलना में अहिंसक भी. वैसे भी, भारत में समस्या सुलझाने का अनूठा तरीक़ा यही है कि समस्या से पीठ मोड़कर खड़े हो जाएं.

कांग्रेस भी ऐसी उठापटक से अछूती नहीं थी. प्रणव मुखर्जी को वह समय याद होगा. वह उन अजोय मुखर्जी के मुख्य सहयोगी थे, जिन्होंने बंगाल कांग्रेस को तोड़ा और फिर बांग्ला कांग्रेस के मुखिया के तौर पर 1967 के चुनाव के बाद संयुक्त मोर्चा सरकार के मुख्यमंत्री बने. ज्योति बसु उस समय उप-मुख्यमंत्री थे और पहली बार कोलकाता की स्ट्रीट लाइट्स को लाल काग़ज़ में लपेटा गया ताकि लाल के उगते सूरज का जश्न मनाया जा सके.

इस गठबंधन का बने रहना असंभव था, क्योंकि उस समय विचारधाराएं जीवित थीं. गठबंधन राजनीति की अस्थिरता ने 1971 में कांग्रेस की सत्ता में वापसी करा दी, जब इंदिरा गांधी ने कांग्रेस के दो फाड़ कर दिए तो प्रणव मुखर्जी बड़ी कुशलता से केंद्र में आ गए. 1964 में हुए कोलकाता दंगे, सत्ता के खेल को पलटने वाली सबसे बड़ा घटना थी. ये दंगे पूर्वी बंगाल में हो रही हिंसा और कोलकाता के मीडिया में हुई कुछ भड़काऊ

वामपंथी आधिकारिक तौर पर टूट चुके थे. टूटा हुआ धड़ा सीपीआई (एम) अधिक संतुलित था. यह कोलकाता के कॉलेज स्ट्रीट की पहली उत्तर-स्वाधीनता पीढ़ी के मनमाफिक रूढ़ था और उनके नौकरीपेशा अभिभावकों के लिए उनकी नौकरी ख़त्म करने पर तुले नक्सलियों की तुलना में अहिंसक भी. वैसे भी, भारत में समस्या सुलझाने का अनूठा तरीक़ा यही है कि समस्या से पीठ मोड़कर खड़े हो जाएं.

रिपोर्टिंग के वजह से हुए थे. यह अक़्सर भुला दिया जाता है कि बंगाल एक विभाजित प्रांत है. सीपीआई (एम) ने इन दंगों में मुस्लिमों की रक्षा करके उनका भरोसा जीत लिया. बिमान बोस, वर्तमान सीपीआई (एम) सचिव, उन युवकों में से थे जो मौलाली स्ट्रीट के कोने में खड़े होकर दंगाइयों और हत्यारों को मार्क्सवादियों की खींची लकीर पार करने की चुनौती दे रहे थे. चार दशकों से भी पुराना यह रिश्ता आख़िरकार 2009 में तब ख़त्म हो गया, जब मुस्लिमों ने सीपीआई (एम) का साथ छोड़ दिया. वाम का उदय उस हंगामे और अराजकता के बीच से हुआ जिसने उस समय के बंगाल को घेर रखा था. अब जब इसका अस्त हो रहा है, क्या उसकी जगह फिर से हिंसा लेगी? 1960 के समय की परिस्थितियों की पुनरावृत्ति होते देखना बड़ा रोचक है. माओवादी फिर वापस आ गए हैं. इस बार उनके साथ दीवारों पर लिखे माओ के नारे और शहरी आतंकवाद नहीं है, लेकिन वह पहले से ज़्यादा व्यवस्थित हैं. मिदनापुर में तीर-धनुष लेकर खड़े पुरुषों और महिलाओं के दृश्य साठ और सत्तर के शुरुआती सालों की याद ताज़ा करते हैं. इससे यह भी साबित होता कि हमारी एक बड़ी आबादी अभी भी तीर-धनुष के युग में जी रही है. लालगढ़ के लिए हो रही लड़ाई के शाब्दिक और सांकेतिक अर्थ दोनों हैं. हालांकि यह कभी स्वीकार नहीं किया गया, लेकिन सच तो यह है कि नक्सलियों के ख़िलाफ़ 1967 से 73 के बीच चली पहली लड़ाई में कांग्रेस और सीपीआई (एम) ने एक दूसरे से सहयोग किया था, इस बार भी उन्हें ऐसा ही करना पड़ रहा है.

हालांकि, उनकी राजनीतिक रणनीतियां अलग-अलग थीं. जहां, कांग्रेस ने नक्सलियों के ख़िलाफ़ राज्य की ताक़त के इस्तेमाल को ही अपना कर्तव्य मान लिया, वहीं सीपीआई(एम) ने भूमि सुधार के ज़रिए नक्सलियों को राजनीतिक स्वीकार्यता दी. यह अफसोस की बात है कि आज कोई इसकी बुनियाद रखने वाले हरिकिशन कोनार और प्रमोद दासगुप्ता को याद नहीं करता. जहां, उन्होंने काश्तकारों को खाद्य सुरक्षा दी, वहीं ज्योति बसु ने गृह मंत्री और मुख्यमंत्री के तौर पर जीवन सुरक्षा की परिस्थिति दी. नंदीग्राम इसकी समाप्ति का महत्वपूर्ण संकेत है, जहां एक वामपंथी सरकार ने काश्तकारों की ज़मीन छीन ली और फिर विरोध करने वालों पर हमला कर दिया.

राजनीतिक परिस्थितियां और प्रकृति एक शून्य की ओर इशारा करती हैं. सीपीआई(एम) के पीछे हटने से बना ख़ालीपन भरा हुआ दिख रहा है, जो वोट करने वाले हैं वे तृणमूल की तरफ़ जा रहे हैं और ग्रामीण इलाक़ों में जो वोट नहीं करते वे माओवादियों की ओर जा रहे हैं. पहली तरह के लोगों की संख्या ज़्यादा है, लेकिन पाला बदलना अवसरों पर निर्भर करता है. साहस और स्थिरता ममता बनर्जी को राइटर्स बिल्डिंग के शिखर तक ले जाएंगे, लेकिन वहां बने रहने के लिए महज़ इनसे काम नहीं चलेगा. किसान और काश्तकार, जिन्हें कोनार ने कभी पोषित किया था, अब संपन्नता के अगले स्तर पर पहुंचना चाहते हैं. नई पीढ़ी के साथ आई नई आशाओं के पूरा करने के लिए कृषि और उद्योग आधारित अर्थव्यवस्था में विकास की ज़रूरत है. ममता बनर्जी को इस तरह की एक सरकार के लिए तैयारी करने को एक साल का समय मिलेगा, जो थके हुए चेहरों के घालमेल से बेहतर हो. 1960 में खेल को पलटने वाले कोलकाता दंगों को भूलना बेवकूफी होगी. हिंसा एक संक्रामक महामारी है, और ज़मीन से जुड़ी समस्याओं में हमेशा एक ख़तरा छुपा होता है. बंगाली लोग ख़ुद को असांप्रदायिक मानते हैं. दरअसल कुछ पलों के पागलपन को छोड़कर, जब सभ्य दिमाग़ बिखर जाता है, कोई सांप्रदायिक नहीं होता.

बंगाल का यह नाटकीय खेल ज़ोरदार भाषण दे रहे अभिनेताओं से भरा है. हमें जल्द ही इसके लिए एक उपयुक्त कहानी ढूंढने की ज़रूरत है.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

रवि किशोर

उच्च शिक्षण संस्थानों में अन्य पिछड़े वर्गों को आरक्षण

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने 11 अप्रैल 2008 को अशोक कुमार ठाकुर बनाम भारतीय संघ के मामले में जनहित याचिका पर सुनवाई करते हुए ऐतिहासिक फ़ैसला दिया. यह याचिका उच्च शिक्षण संस्थानों में 27 फीसदी आरक्षण के सरकारी आदेश के ख़िलाफ़ दायर की गई थी. याचिका में कॉन्स्टिट्यूशन (93 वां संशोधन) एक्ट, 2005 और अन्य पिछड़े वर्ग का आरक्षण लागू करने वाले केंद्रीय शिक्षण संस्थान (दाख़िले में आरक्षण) एक्ट 2006 (2007 के एक्ट 5) को चुनौती दी गई थी.

कॉन्स्टिट्यूशन (93 वां संशोधन) एक्ट, 2005 द्वारा जोड़े गए अनुच्छेद 15(5) में कहा गया है-

अनुच्छेद 19 के नियम (1) का उपनियम (ज), सरकार को सामाजिक और शैक्षिक तौर से पिछड़े वर्ग या अनुसूचित जाति या जनजाति के लिए ऐसा कोई विशेष क़ानूनी प्रावधान करने से नहीं रोक सकता, जब तक कि वह प्रावधान उच्च शिक्षा संस्थानों, जिनमें अनुच्छेद 30 (1) में उल्लिखित निजी संस्थान भी शामिल हैं, में दाख़िले से संबंधित हो. इस क़ानून के सेक्शन 3 में, केंद्रीय शिक्षण संस्थानों में अनुसूचित जातियों के लिए 15 फीसदी, अनुसूचित जनजातियों के लिए 7.5 फीसदी और अन्य पिछड़ा वर्ग के लिए 27 फीसदी आरक्षण की व्यवस्था दी गई. ये सरकारी अनुदान से चल रहे ऐसे संस्थान थे, जिन्हें इसी क़ानून के सेक्शन 2(डी) में पारिभाषित किया गया था. विभिन्न वर्गों को दिए गए आरक्षण का प्रतिशत इन संस्थानों की वार्षिक क्षमता के संदर्भ में था.

क़ानून के सेक्शन 5 में यह निर्देश था कि केंद्रीय शिक्षण संस्थानों में आरक्षण मुहैया कराने के लिए आनुपातिक रूप से सीटों में बढ़ोतरी की जाए.

जहां किसी याचिकाकर्ता ने अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षण का विरोध नहीं किया था, वहीं अन्य पिछड़ा वर्ग के लिए 27 फीसदी आरक्षण का कई याचिकाकर्ताओं ने विरोध किया था.

माननीय सर्वोच्च न्यायालय की पांच जजों की एक खंडपीठ ने क्रीमीलेयर को हटाकर अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण के पक्ष में निर्णय दिया. सर्वोच्च न्यायालय ने कहा-आरक्षण उन उपायों में से एक है जिसके ज़रिए समानता के सिद्धांत को सुरक्षा और बढ़ावा दिया जाता है, ताकि पिछड़े वर्ग भी सामाजिक व्यवस्था के ऊपरी स्तर पर लाए जा सकें...यह राज्य का कर्तव्य है कि वह असमानता को ख़त्म करने के लिए सकारात्मक उपाय करे. आरक्षण, उच्च शिक्षा का सपना देखने वाले लेकिन उस तक नहीं पहुंच पाने वाले लोगों के लिए एक लाभकारी व्यवस्था है. यह लाभ ज़रूरी भी है. हालांकि, इस बात पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि ऐसा कोई भी आरक्षण किसी और तरह के भेदभाव को बढ़ावा न दे.

संविधान का सर्वोच्च उद्देश्य है कि किसी व्यक्ति के साथ जाति के आधार पर भेदभाव न हो. इसके लिए दी गई सकारात्मक उपायों की व्यवस्था संवैधानिक व्यवस्था के तहत सामाजिक न्याय का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है. हालांकि, सकारात्मक उपायों के बीच यह भी ध्यान रखना ज़रूरी है कि इस तरह के उपायों से सामाजिक समानता के सिद्धांतों या अन्य मौलिक स्वतंत्रताओं या संविधान के मूल तत्व से छेड़छाड़ नहीं होती हो.

इस बात पर यह कहने की कोई ज़रूरत नहीं कि व्यक्तिगत अधिकार, सामाजिक अधिकारों से अधिक महत्वपूर्ण हैं. सभी मौलिक अधिकारों को एक साथ देखना ज़रूरी है - जातिगत आधार पर विभाजन कालांतर में ख़तरनाक हो सकता है. इसलिए इसके पीछे की तार्किकता का परीक्षण का ज़रूरी है. जब उद्देश्य जाति व्यवस्था का ख़ात्मा और एक जातिरहित समाज और जातिगत भेदभाव से मुक्त समाज हो, तब कुछ सीमाओं के अंदर न्यायिक समीक्षा की व्यवस्था से इंकार नहीं किया जा सकता. अगर आरक्षण सफल नहीं होता है तो दूसरे तरीक़े भी ढूंढ़े जा सकते हैं. सामाजिक सशक्तीकरण महज़ सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े लोगों के लिए ही नहीं है, सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़े लोगों के लिए भी है. इस विषय में एक संतुलन क़ायम करना महत्वपूर्ण है.

एक जातिविहीन समाज किसी महान सपने के सच होने जैसा होगा. संविधान में न तो जातिविहीन समाज की व्यवस्था दी गई है और न ही जातियों को ख़त्म करने की कोई कोशिश की गई है. लेकिन जाति के नाम पर भेदभाव को ग़लत ठहरा कर और उसके ख़िलाफ़ सकारात्मक उपायों की व्यवस्था देकर संविधान जाति-आधारित अंतर को ख़त्म करने की कोशिश करता है. जब जाति-आधारित भेदभाव ख़त्म हो जाएगा तो सभी जातियां बराबर हो जाएंगी- जो एक लोकहितकारी समाज की शुरुआत होगी.

जाति-आधारित आरक्षण के तात्कालिक असर बहुत दुर्भाग्यपूर्ण रहे हैं. आरक्षण के बाद देखा गया है कि अगड़ी जातियां भी पिछड़ी बनने की कोशिश में लग गईं. जब अधिक से अधिक लोग ख़ुद को पिछड़ा कहने लगें तो देश अपने आप पिछड़ जाएगा. अगर जाति-आधारित आरक्षण की समीक्षा नहीं हुई तो जल्द ही देश स्थायी तौर पर जातियों में विभाजित हो जाएगा. विविधता में एकता वाले समाज के बजाय, हम एक-दूसरे पर शक़ करने वाले एक खंडित समाज का हिस्सा हो जाएंगे. जहां सकारात्मक उपायों में ही समानता की राह है, वहीं यह भी ध्यान रखा जाना ज़रूरी है कि यह राह ऐसी न हो जाए जिसमें विकास की गाड़ी अटक जाए. आरक्षण एक अस्थायी व्यवस्था है और इसे स्थायी ज़िम्मेदारी नहीं बनना चाहिए.

सर्वोच्च न्यायालय ने आगे कहा कि भारतीय संघ को यह सही संदर्भों में समझना चाहिए कि सामाजिक और शैक्षिक पिछड़ेपन का असली कारण ग़रीबी है. इस मूल समस्या को ख़त्म करने के हरसंभव प्रयास होने चाहिए. आरक्षण ने ग़लत संदेश भेजा है, जिससे सभी पिछड़ेपन का दर्जा चाहने लगे हैं. अगर हम सही मायनों में सामाजिक, शैक्षिक और आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों का भला करना चाहते हैं तो हमें अनुच्छेद 21(अ) को पूरी तरह से लागू करने पर ध्यान देना होगा, जिसके मुताबिक-राज्य को छह से चौदह साल तक के सभी बच्चों को मुफ़्त और अनिवार्य शिक्षा मुहैया करानी होगी. हमें शिक्षा के अवसर पहले दिन से ही मुहैया कराने होंगे. तभी जातिविहीन-वर्गविहीन समाज का सपना पूरा हो सकता है. जब छात्र कॉलेज जाने की उम्र में पहुंच चुके होते हैं, तब तक आरक्षण के असर के लिए काफी देर हो चुकी होती है. सबसे महत्वपूर्ण मूल अधिकार अनुच्छेद 21-अ है, जिसको लागू करना देश के हित में सर्वोपरि है. शिक्षा सभी अधिकारों में सबसे महत्वपूर्ण है, क्योंकि अधिकारों को समझने की प्रवृत्ति शिक्षा से ही आती है. इसीलिए यह ज़रूरी है कि मुफ़्त और अनिवार्य शिक्षा पर सरकारी ख़र्चे पर न्यायपालिका नज़र रखे. सरकार को शिक्षा के लिए बजट आवंटन फिर से तय करना चाहिए और अपनी असल प्राथमिकताओं का खाका खींचना चाहिए.

राज्य अनुच्छेद 21(अ) के तहत मुफ़्त और अनिवार्य शिक्षा देने को बाध्य है. इस को लागू करने का सर्वश्रेष्ठ तरीक़ा वही है जिसे हम सज़ा के साथ उपहार के तरीक़े के नाम से जानते हैं.

2007 के एक्ट 5 को क्रीमी लेयर को बाहर रखने की शर्त पर संवैधानिक रूप से वैध करार दिया गया है. सर्वोच्च न्यायालय के आदेश के बाद अन्य पिछड़े वर्गों का आरक्षण एक वास्तविकता है, लेकिन अब वक़्त आ गया है कि हम सामाजिक विकास में आरक्षण के महत्व को समझें और सामाजिक न्याय के समर्थन में ख़ुद को खड़ा करें.

(लेखक सुप्रीम कोर्ट के वकील हैं)

feedback.chauthiduniya@gmail.com

आदरणीय संपादक महोदय,
आपका पिछला अंक देखने को मिला. इस अंक की आवरण कथा ख़ास तौर पर अच्छी लगी. सच बात तो यह है कि शिक्षा किसी भी देश की रीढ़ होती है. युवा पीढ़ी अगर शिक्षित है, तभी वह मानव संपदा के तौर पर देश की प्रगति में अपना योगदान दे सकती है. प्राथमिक शिक्षा और माध्यमिक शिक्षा का तो अपने देश में जो हाल है, सो है ही, उच्च शिक्षा में भी भ्रष्टाचार और घपलेबाजी ने गंभीर प्रश्न खड़े कर दिए हैं.
ख़ुशी की बात यह है कि सरकार ने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की आपत्तियों को दरकिनार करते हुए यशपाल समिति की रिपोर्ट को स्वीकार कर लिया है. अब उसका कर्तव्य बनता है कि वह यथाशीघ्र इस समिति की सिफ़ारिशों को लागू करे. बाधाएं आएंगी, लेकिन सरकार को उसकी परवाह नहीं करनी चाहिए.
अख़बार के बाकी सभी स्थायी स्तंभ और रपटें भी बेहतर लगे. स्वास्थ्य और करियर पर पूरा पन्ना शुरू कर आपने निस्संदेह बढ़िया काम किया है. संपादकीय हमेशा ही सोचने को मजबूर करता है.
अंत में, सायना नेहवाल के चैंपियन बनने पर बधाई.

आपका
नंदकिशोर
शकरपुर, दिल्ली

जब तोप मुक़ाबिल हो

सरकार को संवेदनशील होने की ज़रूरत

हमारे देश में समस्याएं दिनों दिन बढ़ रही हैं और लोगों का भरोसा टूटता जा रहा है. वे जब अपनी तकलीफ़ें लेकर जाते हैं तो सरकारी नुमाइंदे अपने कान बंद कर लेते हैं, बस हाथ आगे बढ़ा देते हैं. लोग सामूहिक तौर पर चंदा कर के भी अब घूस देने लगे हैं. नहर का पानी खेतों की सिंचाई के लिए चाहिए तो घूस देनी पड़ती है.

संवेदनशील होना किसी भी सरकार के स्वास्थ्य के लिए अच्छा होता है. लोकतांत्रिक देशों के लिए ख़ासकर भारत जैसे दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र के लिए तो यह परम आवश्यक है. कुछ महीनों पहले हमने देखा कि हमारे पड़ोसी मुल्क पाकिस्तान में वहां की तत्कालीन मुशर्रफ सरकार ने लोगों की आवाज़ नहीं सुनी. परिणामस्वरूप वकीलों ने वहां आंदोलन खड़ा कर दिया, जिसका ज़बरदस्त समर्थन वहां की जनता ने किया. पाकिस्तान का यह पहला बड़ा जनांदोलन था, जिसकी वजह से मुशर्रफ को जाना पड़ा. इतना ही नहीं, वकीलों ने फिर ज़बरदस्त जनांदोलन किया जिसे जनता ने फिर समर्थन दिया तथा बर्ख़ास्त जजों को वहां की नई सरकार को पुनः बहाल करना पड़ा.

ऐसे आंदोलनों का इतिहास भारत में रहा है, जिसकी वजह से हमें आज़ादी मिली. समाजवादियों ने डॉ. लोहिया के नेतृत्व में सफल आंदोलन किए, छात्र आंदोलन हुए और आख़िरी आंदोलन जयप्रकाश आंदोलन हुआ. जहां सरकारों ने पीड़ितों की आवाज़ सुनी वहां उसने मांगें मान शासन किया और जहां नहीं सुनी, वहां उसे जाना पड़ा. लेकिन पिछले बीस सालों से जनता के दुख और उसकी तक़लीफ़ों को न सुनना और न देखना बढ़ता जा रहा है.

हमारे देश में समस्याएं दिनों दिन बढ़ रही हैं और लोगों का भरोसा टूटता जा रहा है. वे जब अपनी तक़लीफ़ें लेकर जाते हैं तो सरकारी नुमाइंदे अपने कान बंद कर लेते हैं, बस हाथ आगे बढ़ा देते हैं. लोग सामूहिक तौर पर चंदा कर के भी अब घूस देने लगे हैं. नहर का पानी खेतों की सिंचाई के लिए चाहिए तो घूस देनी पड़ती है. अगर रोज़गार गारंटी योजना के तहत काम चाहिए तो घूस देनी पड़ती है. अगर अपनी मेहनत की कमाई किसी सरकारी महकमे से लेनी हो तो घूस देनी पड़ती है. किसानों को बीज, खाद, पानी और उसके बाद भी फ़सल की क़ीमत का न मिल पाना, उनके बीच का असंतोष बढ़ा रहा है.

देश में पीने के पानी का संकट बढ़ रहा है. अमीर बस्तियों में रहने वाले टैंकर से ख़रीद कर पानी पी लेते हैं, लेकिन ग़रीब पीने के पानी के लिए आपस में लड़ मर रहे हैं. बीमार पड़ने पर अस्पताल हैं ही नहीं, क्योंकि अस्पतालों में न डॉक्टर हैं और न दवाएं. महंगे प्राइवेट अस्पतालों में आम आदमी जा नहीं सकता. शिक्षा में उसकी रुचि है, लेकिन स्कूलों का ताना-बाना टूट चुका है. बच्चे सिर्फ़ अपना वक़्त बर्बाद करने स्कूल जाते हैं और ज़्यादातर पांचवीं या आठवीं क्लास से पढ़ाई छोड़ देते हैं.

हमारा तंत्र इन समस्याओं को जानता है, लेकिन उन्हें हल करना नहीं चाहता. सत्ता में रहने वालों को सिर्फ़ तीन या पांच साल के बारे में नहीं सोचना चाहिए. अगर वे अगले बीस या पचास साल के बारे में नहीं सोचते तो हमें मानना चाहिए कि उनके सामने देश का कोई नक़्शा है ही नहीं, इसीलिए आज देश के हालात बिगड़ते दिखाई देते हैं.

लालगढ़ एक उदाहरण है, जहां सरकार, उसकी पुलिस और विशेष पुलिस के ख़िलाफ़ आम जनता उठ खड़ी हुई. लगभग दो महीनों से ज़्यादा समय तक पूरे इलाक़े के संस्थानों पर हथियारबंद माओवादियों का क़ब्ज़ा रहा और सरकार नाम की चीज़ वहां से ग़ायब रही. जब सरकार ने अपनी पुलिस भेजी तो सैकड़ों गांव वाले, औरतों-बच्चों सहित रास्ते में खड़े हो गए. रास्ते में पेड़ काट कर डाल दिए, ताकि पुलिस के वाहन न पहुंच सकें. क्यों ऐसा हुआ या सोचना चाहिए कि क्यों ऐसा होता है?

ग़रीबों की तक़लीफ़ों को जब सरकारें अनसुनी कर देती हैं तो

ऐसे आंदोलनों का इतिहास भारत में रहा है जिसकी वजह से हमें आज़ादी मिली. समाजवादियों ने डॉ. लोहिया के नेतृत्व में सफल आंदोलन किए, छात्र आंदोलन हुए और आख़िरी आंदोलन जयप्रकाश आंदोलन हुआ. जहां सरकारों ने पीड़ितों की आवाज़ सुनी वहां उसने मांगें मान शासन किया और जहां नहीं सुनी, वहां उसे जाना पड़ा. लेकिन पिछले बीस सालों से जनता के दुख और उसकी तक़लीफ़ों को न सुनना और न देखना बढ़ता जा रहा है.

ग़रीब उनके साथ हो जाते हैं जो उनकी तक़लीफ़ों को भविष्य में दूर करने की आशा दिखाते हैं. ऐसे जिले देश भर में डेढ़ सौ के आस-पास हैं. इनकी संख्या बढ़ रही है और सरकार सो रही है. एक लालगढ़ के दो सौ गांवों को अपने क़ब्ज़े में लेने में सरकारी पुलिस को अभी तक कामयाबी नहीं मिली है. बारूदी सुरंगों को तलाशने में उसे अनपढ़ गांववालों को लगाना पड़ रहा है, क्योंकि वे स्वयं मरना नहीं चाहते.

रेल छत्तीस घंटों तक लोगों के क़ब्ज़े में रहती है. पुलिस लाइन और जेल पर नक्सलियों का तीन से पांच दिनों तक क़ब्ज़ा रहता है. सरकार उन पर तभी नियंत्रण स्थापित कर पाती है जब नक्सली स्वयं अपना नियंत्रण हटा लेते हैं. कई जिलों में तो पुलिस सिर्फ़ शहरों तक सीमित रहती है, आगे निकलती ही नहीं, क्योंकि उसने नक्सलियों से समझौता कर लिया है. कुछ पुलिस चौकियों के सिपाही तो अपनी चौकी में रहने के लिए नक्सलियों को हफ़्ता देते हैं.

सरकार अगर सोचती है कि जहां-जहां ऐसी स्थिति पैदा होगी, वह उसे क़ानून व्यवस्था के नाम पर संभाल लेगी, तो यह उसका भ्रम है. दरअसल देश के डेढ़ सौ से दो सौ जिलों में एक साथ लालगढ़ जैसे विद्रोह की तैयारी शुरू हो चुकी है. अगर यह विद्रोह सचमुच एक साथ प्रारंभ हुआ तो सरकार इसका सामना कैसे करेगी, अभी तक हमारी समझ में नहीं आ रहा. एक बात ज़रूर होगी और वह है नरसंहार, ग़रीबों की गोलियों से मौत, जिसकी प्रतिक्रिया की कल्पना भी हम आज नहीं कर सकते.

क्या शासन चलाने वाले लोग समस्याओं को सुनने और उनका हल निकालने का भरोसा आम लोगों को नहीं दिला सकते? क्योंकि यही एक रास्ता है जो हमें संपादित उग्र हथियारबंद संघर्ष से बचा सकता है. इसके लिए आवश्यक है कि सरकार अपने सोचने के तरीक़े में बदलाव लाए और ज़िम्मेदार लोगों की ओर देखने वाली सरकार की तरह काम करें.

बेरोज़गारी, महंगाई और भ्रष्टाचार ऐसे तत्व हैं जो जनता को निराशा की ओर ले जाते हैं. देश वैसे ही सीमाओं को लेकर चिंतित है. अगर तनाव सीमा पर बढ़ता है और देश का बड़ा हिस्सा आंतरिक तनाव की चपेट में आ जाता है, तो हमें एक भयानक स्थिति का सामना करने के लिए तैयार रहना चाहिए.

ये सवाल मीडिया से ग़ायब हो गए हैं, इसलिए उन्हें इस बात की जानकारी ही नहीं मिल पाती जो सत्ता प्रतिष्ठान पर दबाव डाल सकते हैं. एक अजीब सी संवादहीनता और ख़तरनाक असंवेदनशीलता का फैलाव देश में हो रहा है. हमें तो अल्पसंख्यकों और दलितों के भीतर उबलते असंतोष का भी अंदाज़ा नहीं है. अगर ये वर्ग भी विद्रोह पर उतर आए तो? अभी भी समय है कि सरकार अपना नज़रिया बदले, अपनी योजनाओं की दिशा बदले और आम लोगों की विशेष कर किसानों की तकलीफ़ पर ध्यान दे. नहीं तो लालगढ़ जैसी घटनाएं शहरों के भीतर कब शुरू हो जाएं, कहा नहीं जा सकता.

संपादक
editor.chauthiduniya@gmail.com

बी के मौरीन

अध्यात्म में हैं आतंक के अंत का मंत्र

अंतरराष्ट्रीय आतंकवाद हम सभी को पीड़ा देता है. स्वयं लंदन में भी 1980 के दशक और ज़ाहिर तौर पर हाल तक यानी जुलाई 2005 तक भी बम के धमाके झेलता रहा है. भले ही हम उस शहर या देश में नहीं रहते हों, जो आतंकवाद से पीड़ित हो, लेकिन आतंकवाद ख़ुद ही भय की संस्कृति पर ज़िंदा रहता और इसे बढ़ाता है. आतंक के ख़िलाफ़ लड़ाई की वजह से बहुमूल्य संसाधन भी मानव कल्याण से दूर हो जाते हैं. यह भी बिल्कुल साफ है कि आतंक के ज़रिए और आतंक ही बढ़ता है. हम बिना किसी समाधान के हिंसा का निरर्थक प्रसार देख रहे हैं. जहां भी भय है, वहां शांति नहीं हो सकती. डर तो एक तरह का रक्षात्मक रवैया विकसित कर देता है, जिससे दुनिया कई धड़ों में बंट जाती है.

आज की दुनिया में हमें ख़ुद से कई गंभीर सवाल पूछने होंगे. जब हमारे पास इतनी शिक्षा है, वैज्ञानिक विकास और सामाजिक समझ है, तब क्यों हरेक महादेश में लोगों के इस तरह के समूह हैं, जो हिंसा का सहारा ले रहे हैं?

हम अपनी आंतरिक मानवीयता क्यों खो रहे हैं? आख़िर मानवीय हृदय के अंदर ऐसी खलबली क्यों मची है?

चार जून को मैं येरूशलम में थी. सच पूछिए तो ठीक उसी दिन जब राष्ट्रपति ओबामा ने काहिरा में अपना महत्वपूर्ण भाषण दिया था. येरूशलम वही शहर है, जो तीन महान धर्मों को माननेवालों को प्रिय है, फिर भी उसी शहर के लोग एक दूसरे से डरते हैं. मैंने वहां एक कांफ्रेंस में भी शिरकत की. उसी दौरान हमने व्यक्तिगत के साथ ही वैश्विक पहचान को भी समझने की ज़रूरत महसूस की. पहचान पर ही ख़तरा पैदा हो गया है और उस पहचान को बचाने की कोशिश में ही द्वंद्व पैदा होता है. इन हालात में हम सभी धर्मों के उस सुनहरे नियम का पालन नहीं कर सकते जो बताता है कि ख़ुद की तरह ही अपने पड़ोसियों को भी प्यार करो.

यह आध्यात्मिक सत्य है, जो बेहद आधारभूत सिद्धांत है, कि आंतरिक तत्व ही बाहर प्रदर्शित होते हैं. इंसानों की आंतरिक अवस्था ही बाहरी दुनिया को निर्धारित करती है.

यहीं दूसरा सवाल भी उठता है. क्या इंसान का मूल स्वभाव बुरा है या भला?

चार जून को मैं येरूशलम में थी. सच पूछिए तो ठीक उसी दिन जब राष्ट्रपति ओबामा ने काहिरा में अपना महत्वपूर्ण भाषण दिया था. येरूशलम वही शहर है, जो तीन महान धर्मों को माननेवालों को प्रिय है, फिर भी उसी शहर के लोग एक दूसरे से डरते हैं. मैंने वहां एक कांफ्रेंस में भी शिरकत की. उसी दौरान हमने व्यक्तिगत के साथ ही वैश्विक पहचान को भी समझने की ज़रूरत महसूस की.

हम मानवीय महानता के उदाहरण भी देखते हैं और साथ ही हिंसात्मक रवैया. हालांकि, हरेक मानव के पास अच्छाई की संभावना और ताक़त है. हम जब अपनी अच्छाई को दबा देते हैं, तभी हमारे कार्य विनाशकारी हो जाते हैं.

दूसरे के कष्ट को अगर हम समझने लगें, भले ही छोटे स्तर पर ही सही. हम दूसरे की आलोचना करते ही अपनी आंतरिक अच्छाई से भटक जाते हैं. बाक़ी सारी हिंसा इसी से जन्म लेती है.

अपनी आंतरिक अच्छाई को पाने का मतलब अपनी आंतरिक प्रज्ञा को जगाना है, ख़ुद का महत्व पहचानना है और दूसरे की ज़िंदगी का आदर करना है. इसका एक साधारण प्रभाव तो यही होगा कि हम अपनी आत्मा शुद्ध रखेंगे और कुछ मूल्यों जैसे सम्मान, सहिष्णुता और उदारता को समझ सकेंगे. इसके बिना हम अंदर से ख़ालीपन महसूस करते हैं जो आख़िरकार हमारे बाह्य आचरण पर नकारात्मक प्रभाव डालता है. यह प्रभावशाली बनने और ताक़त हथियाने को हमें प्रेरित करता है. यही असुरक्षा आख़िरकार हमें हिंसा की ओर धकेलती है.

आध्यात्मिक पहचान को खोने और केवल बाहरी भौतिक दुनिया से ही जुड़कर हम हिंसक संस्कृति को पैदा करते हैं.

अपनी आंतरिक अच्छाई को विकसित करना कुछ ऐसा नहीं है, जिसके लिए कोई विधेयक लाना होगा. किसी क़ानून से इसे ज़बरिया लागू नही किया जा सकता, इसे तो केवल मानव का हृदय ही समझ सकता है. इसके लिए हमें जीवन की शिक्षा और राजनीतिक इच्छाशक्ति की ज़रूरत होगी ताकि हम ताक़त और धन की पूजा करना छोड़ सकें, जिनका इस्तेमाल हथियारों के व्यापार और निर्बलों को कुचलने में होता है.

यह मेरी गुज़ारिश है कि हम अपने संसाधनों को आध्यात्मिक शिक्षा देने के काम में लाएं. यह सचमुच हिंसा की जड़ को ख़त्म करने का व्यावहारिक उपाय है. इससे हिंसक प्रवृत्ति वालों को शांति की तरफ़ मोड़ना संभव होगा. एक व्यक्ति के बदलाव से ही आख़िरकार हम समुदायों और देशों को बदल सकेंगे. इसी वजह से यह हमारा परम कर्तव्य है कि हम दिन में कुछ समय तो अपने साथ बिताएं ही, ताकि हमारी आंतरिक अच्छाई को बाहर आने का समय मिल सके. यह तो बस ख़ुद को याद दिलाने सरीखा है कि हमारी प्रतिष्ठा हमारी आत्मा से बड़ी नहीं है और हरेक इंसान का जीवन उतना ही अहम है, और उसमें रूपांतरण की संभावना भी है. इससे फ़र्क़ नहीं पड़ता कि आदमी का व्यवहार कैसा है.

व्यावहारिक जीवन में ऐसे कई उदाहरण हैं, जिनकी ज़िंदगी पूरी तरह बदल गई है. हमारे आध्यात्मिक विश्वविद्यालयों में (जिनकी संख्या भारत और पूरी दुनिया में कुल मिलाकर 100 से भी अधिक है) और दूसरे अन्य संगठनों में भी व्यक्तियों का रूपांतरण हुआ है.

यहां मैं ऐसे दो उदाहरण देना चाहूंगी. पहला तो थाईलैंड-बर्मा सीमा पर बने एक शरणार्थी शिविर का है. वहां के गार्ड शिविर के बच्चों के लिए लाए गए भोजन को चुरा लेते थे. वहां मानवीयता और सहृदयता का अभाव था. यहां बच्चों और रक्षकों, दोनों के लिए मूल्यों की शिक्षा देने की शुरुआत की गई. यह उसी सिद्धांत पर आधारित था कि हरेक व्यक्ति में ही बेहतर बनने की क्षमता है. कुछ ही सप्ताह में शिविर का पूरा वातावरण और संस्कृति बदल गई. एक साल बाद वह बदलाव स्थायी हो गया. इसी तरह भारत के कई हिस्सों में ब्रह्मकुमारियों ने गांवों को गोद ले लिया है. वह साक्षरता, खेती में मदद और सबसे ऊपर आध्यात्मिक शिक्षा देने में मदद करती हैं. नतीजे बेहद सकारात्मक हैं, बात चाहे खाद्य-उत्पाद की हो या सामाजिक सौहार्द की. सबसे बड़ी बात तो यह कि यह बदलाव आध्यात्मिक शिक्षा और मूल्यों से स्थायी हो जाता है. हमारे अंदर की मानवीयता और उच्चतम नैतिकता और गुणों को पाना ही पूरी मानवता के लिए सबसे बड़ी आशा है. वह दुनिया शांति और सौहार्द की होगी, जहां हिंसा किसी भी रूप में त्याज्य होगी.

(लेखिका ब्रह्मकुमारी वर्ल्ड स्प्रिच्युल यूनिवर्सिटी, इंग्लैंड में प्रोग्राम-डायरेक्टर हैं)

feedback.chauthiduniya@gmail.com

कहीं आप भी तो नहीं हैं सीआईए के एजेंट ?

ख़ुफ़िया संगठनों की परत-दर-परत पड़ताल में ऐसे राज़ सामने आते हैं जिन्हें जानकर चौंके बिना नहीं रहा जा सकता. इन संगठनों की बुनियाद ही इतने रहस्यों, झूठों और धोखों पर बनी है कि इनकी हर परत उधेड़ते ही कई चौंकाने वाली बातें सामने आ जाती हैं. ख़ुफ़िया संगठनों की कहानी की पिछली कड़ी में सीआईए की शुरुआत और उसके असर पर हम नज़र दौड़ा चुके हैं. आइए इस बार आपको रू-ब-रू कराते हैं, सीआईए के काम करने के ऐसे तरीक़े से जिससे यह साफ हो जाएगा कि आख़िर क्यों है सीआईए दुनिया की सबसे शातिर ख़ुफ़िया एजेंसी...

सीआईए के नेटवर्क के फैलाव के पीछे ऐसे कई लोग हैं. सीआईए अपने आधिकारिक एजेंटों के अलावा जानकारियां जुटाने के लिए ऐसे लोगों को अपने नेटवर्क से जोड़ती है. अक्सर किसी पुराने एजेंट के ज़रिए इन लोगों की पहचान की जाती है.

राज सिंह (बदला हुआ नाम), *पेशा :* पत्रकारिता,
संस्थान : एक विदेशी पत्रिका
डॉ. एल. राजनाथन (बदला हुआ नाम), *पेशा :* वैज्ञानिक, *संस्थान :* एक विदेशी वैज्ञानिक संस्थान में फेलोशिप
रवींद्र गुलाटी (बदला हुआ नाम), *काम :* डॉक्टरी शोध, *संस्थान :* एक भारतीय संस्था से अनुदान पर शोध

ये तीनों ही कोई प्रसिद्ध नाम नहीं हैं, जिनकी पहचान बदलनी पड़े. इनकी पहचान बदलने के पीछे का कारण दरअसल इनका काम है. तीनों के काम करने के क्षेत्र अलग-अलग हैं. शायद तीनों कभी एक-दूसरे से मिलेंगे भी नहीं. तीनों अपने-अपने काम में माहिर हैं. अपने काम से जुड़ी हर ख़बर रखते हैं. बस एक बात है जिसकी ख़बर इन्हें नहीं है. वह यह कि ये तीनों एक ही संस्था के लिए काम करते हैं. वह संस्था जिसे हम सीआईए के नाम से जानते हैं.

दरअसल, इन तीनों को नहीं पता कि ये किस तरह से सीआईए के लिए काम करते हैं. शायद इस बात को वे कभी मानेंगे ही नहीं. यही तो सीआईए के काम करने का तरीक़ा है कि उसके लिए काम करने वाले भी नहीं जानते कि वे सीआईए के लिए काम कर रहे हैं. आप को भले ही यह सुन कर हैरानी हो, पर यह सच है कि दुनिया की सबसे ताक़तवर ख़ुफ़िया एजेंसी सीआईए के लिए काम करने वाले अधिकतर लोग यह बात जानते भी नहीं कि वे सीआईए के लिए काम करते हैं.

अब उदाहरण के तौर पर राज के काम को ही लें. वह एक विदेशी पत्रिका के लिए काम करते हैं. भारत की राजनीतिक घटनाओं और बदलते समीकरणों पर लेख लिखते हैं. हर राजनीतिक दल के अंदर इनके संबंध हैं, और इन्हीं के बल पर इन घटनाक्रमों की गहन पड़ताल करते हैं. इन मुद्दों पर उनके लेखों के लिए उन्हें अच्छा ख़ासा वक़्त भी मिलता है और बदले में अच्छा पारिश्रमिक भी. उनके लिए यह उनका काम और पत्रकार धर्म दोनों है. हां, कभी-कभी उन्हें यह भले ही अजीब लगता है कि जिस विदेशी पत्रिका के लिए वह काम करते हैं, उसे भारत के छोटे-मोटे मामलात में क्यों दिलचस्पी है. दरअसल वह ये नहीं जानते कि जिस पत्रिका के लिए वह काम करते हैं, वह उनकी दी गई जानकारी का इस्तेमाल महज़ ख़बर के लिए ही नहीं करती. भारत के छोटे से छोटे मामलों की पड़ताल करते उनके आलेख दरअसल उस जानकारी के भंडार का हिस्सा बनते हैं. वह भंडार अमेरिका के लैंगली में रखे सुपर कंप्यूटरों में जमा किया जाता है. उनकी दी गई जानकारी पहुंचती है दुनिया की सबसे शातिर ख़ुफ़िया एजेंसी के पास- सीआईए के पास. ऐसा ही कुछ डॉ. राजनाथन और रवींद्र के शोधों और

जानकारियों के साथ भी होता है. उनकी जुटाई जानकारी अमेरिकी ख़ुफ़िया विश्लेषकों को भारत की वैज्ञानिक और स्वास्थ्य से जुड़ी बातों को समझने में मदद करती हैं. जिन संस्थाओं के लिए वह काम कर रहे होते हैं वह कहीं-न-कहीं सीआईए से जुड़ी होतीं हैं. अपना काम पूरी शिद्दत और ईमानदारी से कर रहे इन पेशेवरों को रत्ती भर भी अंदाज़ा नहीं होता है कि वे सीआईए के लिए जानकारियां जुटा रहे होते हैं. अनजाने में ही वे सीआईए के एजेंट की भूमिका निभा रहे होते हैं. सीआईए के नेटवर्क के फैलाव के पीछे ऐसे कई लोग हैं. सीआईए अपने आधिकारिक एजेंटों के अलावा जानकारियां जुटाने के लिए ऐसे लोगों को अपने नेटवर्क से जोड़ती है. अक्सर किसी पुराने एजेंट के ज़रिए इन लोगों की पहचान की जाती है. ऐसे लोगों को चुना जाता है, जो किसी ऐसे काम में लगे हैं जिसकी जानकारी सीआईए के लिए महत्वपूर्ण है. ऐसे लोगों में से उन्हें चुना जाता है जिनका ख़ुद का नेटवर्क अच्छा हो और जो ज़्यादा से ज़्यादा जानकारी जुटा सकते हैं. फिर इन लोगों को किसी ऐसे मध्यस्थ की मार्फत जोड़ा जाता है, जिस पर इन्हें शक़ नहीं हो सकता. इस तरह ये लोग बिना शक़-शुबहा के सीआईए के लिए काम करने लगते हैं. इन्हें इनके काम के लिए तमाम सुविधाएं, पैसे और पूरा वक़्त मिलता है, जो इन्हें कंपनी नीतियों के नाम पर दिया जाता है. इस तरह ख़ुशी से अपने काम में जुटे ये लोग सीआईए के ख़ुफ़िया नेटवर्क का महत्वपूर्ण और फ़ायदेमंद हिस्सा बन जाते हैं.

सुनने में यह भले किसी कहानी-सा लगता है लेकिन इस बात में सच्चाई है कि इस तरह का नेटवर्क सीआईए ने दुनिया भर में फैला रखा है. दुनिया की सबसे महंगी ख़ुफ़िया एजेंसी(सीआईए का बजट दुनिया के कई देशों की अर्थव्यवस्था से भी ज़्यादा है) होने का पूरा लाभ उठाते हुए सीआईए पूरा धन लगाकर अपने संसाधनों में बढ़ोतरी कर लेती है. सीआईए के पास इस तरह दुनिया भर में हो रही मामूली-ग़ैर मामूली घटनाओं से जुड़ी जानकारियां इकट्ठा होती रहती हैं. सीआईए के मुख्यालय लैंगली में बैठे विश्लेषक इन जानकारियों को ज़रूरी और ग़ैर-ज़रूरी की श्रेणियों में बांटते रहते हैं. जब भी कोई महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है तो उस पर आगे की जानकारी या कार्रवाई के लिए सीआईए अपने आधिकारिक एजेंटों को भेज देती है. सीआईए का खेल इतना बड़ा है, जिसके कई चरण हैं और किसी के लिए यह समझना असंभव ही है कि उसका इस्तेमाल इस तरह से किया जा रहा है.

ऑफिसों में काम कर रहे आम कर्मचारियों से लेकर बड़ी वैज्ञानिक शोधों तक, हर जगह सीआईए की घुसपैठ है. यह नेटवर्क इतना विशाल और विस्तृत है कि इसे पहचान पाना नामुमकिन है. हां, यहां सवाल यह भी है कि कहीं आप के काम पर भी सीआईए की नज़र तो नहीं है? कहीं आप भी तो इस नेटवर्क का हिस्सा तो नहीं है? कहीं आप भी तो सीआईए के लिए काम करने वालों में नहीं हैं? ज़रा सोचिए.

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback.chauthiduniya@gmail.com

ज़रा हट के

कैसा होगा भविष्य का मौसम

साल 2020 में मौसम गर्म और शुष्क होगा और सर्दियों में ज़ोरदार बारिश होगी. 2050 उससे भी गर्म होगा और ब्रिटेन और दक्षिण-पूर्व एशिया में गर्म हवा से लोग परेशान रहेंगे. 2080 में औसत तापमान 41 डिग्री सेल्सियस तक पहुंच जाएगा. आप अगर बाहर निकलें तो शार्क के हमले का ख़ौफ़ है. अगर ब्रिटिश मौसम वैज्ञानिकों की मानें तो यही हमारे आने वाले समय के मौसम का खाका है. क्या यह दुनिया के अंत की शुरुआत होगी? हालांकि ब्रिटिश वैज्ञानिकों के द्वारा जो खाका खींचा गया है, वह सिर्फ़ ब्रिटिश द्वीप के लिए हैं, लेकिन इन दावों के आधार पर पूरे विश्व के भविष्य के मौसम का अनुमान लगाया जा सकता है. ब्रिटिश मौसम वैज्ञानिकों का यह आकलन वर्तमान मौसम की स्थितियों और पर्यावरण को प्रभावित करने वाले तत्वों को ध्यान में रखकर किया गया है. वैज्ञानिकों का मानना है कि अगर प्रदूषण और कार्बन गैसों का उत्सर्जन इसी गति से जारी रहा तो विश्व के मौसम में बड़ी तेज़ी से बदलाव आएंगे. मौजूदा मौसमी धाराओं में बदलाव आएगा और विश्व के मौसम का मानचित्र फिर से खींचना पड़ेगा. इन बदलावों के प्रति चेतावनी देते हुए इन वैज्ञानिकों कहना है कि यह बदलाव इतने बड़े होंगे जिनके साथ तालमेल बैठा पाना, विश्व की जनसंख्या के लिए बहुत कठिन होगा. वैज्ञानिकों का कहना है कि अधिकतम और न्यूनतम तापमानों में बहुत अंतर आ जाएगा. गर्मी में सबसे गर्म दिन आज के तापमान से 12 डिग्री से भी ज़्यादा बढ़ सकता है, वहीं न्यूनतम तापमान में भी इतनी ही गिरावट आ सकती है. बारिश के कम होने की या फिर अचानक ही कई दिनों भारी बारिश होने की संभावना है. ऐसी प्राकृतिक घटनाएं और आपदाएं हो सकती हैं, जो पहले नहीं देखी गईं थीं. शोध में आकलन है कि अगर प्रदूषण और कार्बन गैस उत्सर्जन और बढ़ा तो ये बदलाव भी तेज़ हो सकते हैं. वैज्ञानिकों का मानना है कि उनके इस शोध से सरकार और प्रशासन आने वाले दिनों में मौसम को समझते हुए उस हिसाब से योजनाएं बना सकते हैं. लोगों को बदलते मौसम के हिसाब से अपने तौर-तरीक़ों और रहन-सहन में बदलाव लाना होगा, तभी वह आने वाले वक़्त में बचे रह पाएंगे.

सीढ़ियों में बसी है अमर प्रेम कहानी

अमर प्रेम के स्मारकों की बात करते ही हमें ताज़महल और उसकी ख़ूबसूरती याद आ जाती है. चीन में प्रेम का एक ऐसा ही स्मारक है जो ऊंचे पहाड़ की एक गुफा में बना है. उससे जुड़ी प्रेम कहानी भी कम रोचक नहीं है. चीन के दो प्रेमियों ल्यू ग्योजिंएग और जू चाओक्विन ने इस गुफा में अपनी पूरी ज़िंदगी बिता दी. दरअसल जू और ल्यू की उम्र में 10 सालों का अंतर था और ल्यू दो बच्चों की विधवा मां थी, ऐसे में उनके प्यार को समाज ने स्वीकार नहीं किया. इन दोनों ने साथ रहने का फ़ैसला कर लिया और दक्षिणी चोग किंग के जियांगजिन इलाक़े में स्थित एक गुफा में रहने लगे. इसी गुफा में उन्होंने पूरी ज़िंदगी बिता दी. सारे कष्टों के बावजूद उन्होंने एक दूसरे का साथ नहीं छोड़ा, दोनों को एक-दूसरे से इतना प्यार था कि इन दिक़्क़तों के लिए वे ख़ुद को ज़िम्मेवार समझते रहे. ल्यू को किसी भी काम के लिए पहाड़ से उतर कर नीचे जाना होता था, जो बड़ी परेशानी का काम था. इस परेशानी को देखते हुए ही जू ने एक ऐसा फ़ैसला लिया जो प्रेम की मिसाल बन गया. उसने उस पहाड़ से नीचे के लिए सीढ़ियां बनानीं शुरू कर दीं. उसके पास न तो बड़े औजार थे न ही कोई मदद, फिर भी बिना रुके वह अपनी प्रेमिका के लिए सीढ़ियां बनाता गया. इस तरह उसने छह हज़ार सीढ़ियां बना दीं, लेकिन इस काम में उसे 50 साल लग गए. 2001 में जब इन सीढ़ियों के बारे में लोगों को पता लगा, तब तक दोनों प्रेमी जीवन के कई बसंत उस गुफा में बिता चुके थे. बाद में उन्हें सम्मानपूर्वक नीचे लाया गया. कुछ साल पहले जू की मृत्यु हो गई. हालांकि इन प्रेम को सच्चा इमान तब मिला जब इनकी प्रेम कहानी को चीन की दस श्रेष्ठ प्रेम कहानियों में जगह दी गई. एक प्रेमी द्वारा अपनी प्रेमिका के लिए अपने हाथों से बनाई गईं ये छह हज़ार सीढ़ियां आज एक संग्रहालय बन चुकी हैं, और इन्हीं सीढ़ियों के साथ अमर हो चुकी है उनकी प्रेमकथा भी.

दवा पर प्रतिबंध से बची जान

इंग्लैंड के मेडिकल शोधकर्ताओं का दावा है कि एक दवा के बाज़ार से हटाए जाने की वजह से देश में आत्महत्या की घटनाओं में काफी कमी आई है. शोधकर्ताओं का कहना है कि दर्द निवारक दवा को-पाराक्सोल के ऊपर प्रतिबंध के बाद से इंग्लैंड और वेल्स में पिछले साल कम-से-कम 350 जानें बच गईं. जब 2005 में इस दवा को वापस लेने का निर्णय लिया गया था, तो उसकी काफी आलोचना हुई थी.

यह दवा गठिया (घुटनों और जोड़ों के दर्द) के लिए काफी असरदार थी. इसी वजह से आर्थराइटिस केयर ने इसे वापस लिए जाने का विरोध किया था. वहीं 2005 में इसे वापस लेने का आदेश देने वाली संस्था मेडिसिंस एंड हेल्थकेयर प्रोडक्ट्स रेगुलेटरी एजेंसी (एमएचआरए) का मानना था कि इस दवा के प्रयोग से मौत का ख़तरा बढ़ रहा था. इसको लेने वालों में ओवरडोज से मौत की घटनाएं बहुत आम थीं. ऐसे में विरोध के बावजूद को-पाराक्सोल को 2005 में वापस लेने के लिए कहा गया. आदेश था कि 2007 तक डॉक्टर यह दवा अपने मरीज़ों को देना पूरी तरह से बंद कर दें. सिर्फ़ आपातकालीन स्थितियों में ही इसे दिया जा सकता था, वह भी मरीज़ की ज़िम्मेदारी पर. को-पाराक्सोल का प्रयोग बंद करने के इस आदेश के बाद 2007 तक उसकी डॉक्टरों द्वारा उसकी अनुशंसा (प्रेस्क्रिप्शन) में 60 फीसदी तक की कमी आई.

2007 में इस दवा का लाइसेंस पूरी तरह से हटा लिया गया. 2008 में इस दवा के हटाए जाने बाद से आए अंतरों पर शोध करने वाली टीम ने पाया कि इस दवा पर प्रतिबंध से ओवरडोज की घटनाएं कम हो गईं हैं. हालांकि सबसे बड़ा आश्चर्य उन्हें तब हुआ जब उन्होंने पाया कि पिछले एक सालों में को-पाराक्सोल लेने वालों के बीच आत्महत्या की घटनाओं में भारी कमी आई है. इसी वर्ष पिछले साल की तुलना में आत्महत्या के मामलों में 295 और को-पाराक्सोल से जुड़ीं मौतों में 350 तक की कमी आई है. अब को-पाराक्सोल को अमेरिका में प्रतिबंधित किए जाने पर विचार चल रहा है.

पाकिस्तान के उदारवादी मौलवियों का कैसा होगा कल

अज्ज आक्खां वारिस शाह नूं किते क़बरां बिच्चों बोल
ते अज्ज किताबे-इश्क दा कोई अगला वरका खोल..
इक्क रोई सी धी पंजाब दी, तू लिख लिख मारे बैन
अज्ज लक्खां धीयां रोन्दियां, तैनूं वारिस शाह नूं कहन
उठ दर्दमंदां दिय दर्दिया..उठ तक्क अपणा पंजाब
अज्ज बेल्ले लाशां बिच्छियां ते लहू दी भरी चिनाब..

-अमृता प्रीतम

आज वारिस शाह से अर्ज करती हूं, उठो अपनी क़ब्र से
और पलटो नया पन्ना किताब-ए-इश्क़ का.
रोई थी इक बेटी जब, तुमने लिखी थी लंबी दास्तान
आज रोती हैं लाखों बेटियां पंजाब की, कहती हैं बारहां तुमसे,
ऐ दर्दमंदों के मसीहा, देखो अपने प्यारे पंजाब को,
जिसकी हरियाली ढंक गई है लाशों से
और चिनाब लहू से भर गया है!

-पंजाबी से अनूदित

अक़्दस वहीद

अमृता प्रीतम की वारिस शाह के लिए लिखी ये पंक्तियां (लेखिका ने ये पंक्तियां बंटवारे के वक़्त हुए नरसंहार के बाद लिखी थीं) आज के पाकिस्तान को बख़ूबी बयां करती हैं. हाल ही में नोशेरा और लाहौर के धमाकों ने हुकूमत को हिला कर रख दिया. आज पंजाब तबाही और बर्बादी के एक ऐसे मुक़ाम पर खड़ा है जहां ज़रूरत है कि वारिस शाह अपनी क़ब्र से बाहर आएं और लहूलुहान हुए पंजाब को बचाने की कोशिश करें. पंजाब में तथाकथित मुसलमान ही मुल्लाओं और मौलवियों का क़त्ल कर रहे हैं. पाकिस्तान का तालिबानीकरण अपने चरम पर है और ये शैतान पाकिस्तान को तबाह करने की पूरी कोशिश कर रहे हैं. इन धमाकों को अंजाम देकर आतंकी शैतानों ने साफ कर दिया है कि अपने मंसूबों को पाने के लिए वे इंसानियत की हर सरहद पार कर सकते हैं. जुम्मा-ए-रोज़,12 जून 2009 को, लाहौर और नोशेरा में हुए धमाकों ने इन शैतानी आतंकियों के वहशीपन और दरिंदगी को हमारे सामने रख दिया. इन दोनों हमलों में पाक मस्ज़िद और मदरसे को निशाना बनाया गया. इन दरिंदों ने उनका कत्ल ऐसे वक़्त किया, जब वे ख़ुदा की ख़िदमत कर रहे थे. मासूम निर्दोष बच्चे कुरान की आयतें पढ़ रहे थे. फिर भी ये दहशतगर्द ख़ुद को ख़ुदा का रहनुमा बता रहे हैं. क्या फ़र्क़ है इनमें और उन बेगुनाहों में? क्या उनका ख़ुदा अलग है? या फिर उनकी लड़ाई किसी ताक़त को हासिल करने के लिए है या वह किसी अलग मसाइल की जंग लड़ रहे हैं? 12 जून को ही जुम्मा की नमाज़ के तुरंत बाद एक आत्मघाती हमलावर ने बारह किलो बारूद के साथ जामिया नैमिया में धमाका किया. इस धमाके की चपेट में मदरसे के छात्र और आसपास के इलाक़े के लोग आए. इसी धमाके में पाकिस्तान के सबसे सम्मानित मुल्ला मौलाना सरफ़राज़ नियामी, उनके निकटतम मुल्ला मौलाना खलीलुर रहमान और अब्दुल रहमान की मौत हो गई. इनके साथ-साथ इन धमाकों में एक पत्रकार समेत मदरसे के दो छात्रों की भी मौत हो गई. ये धमाके जिस वक़्त हुए, मदरसे में एक हज़ार बच्चे मौजूद थे. धमाके के बाद मौके से एक संधिग्ध को गिरफ़्तार किया गया है, जिससे पूछताछ चल रही है.

मामले की जांच कर रहे अधिकारी डॉ. हैदर अशरफ ने बताया कि हमलावर ने अपनी कमर में बारूद की पेटी बांध रखी थी और उसकी पहचान नहीं की जा सकती. डॉ. अशरफ ने बताया कि हमलावर सुरक्षा जांच के कारण मदरसे में उस वक़्त नहीं घुस पाया, जब वहां नमाज़ पढ़ी जा रही थी. लेकिन नमाज़ के बाद जैसे ही पुलिस कर्मी मदरसे से चले गए, हमलावर ने अंदर घुस कर ख़ुद को उड़ा लिया. ग़ौरतलब है कि मौलाना सरफ़राज़ नियामी ने ख़तरे की आशंका के बावजूद सुरक्षा लेने से मना कर दिया था.

इस तरह से लाहौर के मशहूर मौलाना सरफ़राज़ नियामी की हत्या को अंजाम देकर तालिबानियों ने साफ कर दिया है कि वह किसी भी हद तक जाकर ऐसे लोगों का सफाया कर देंगे, जो उनकी मुख़ालफत करेगा. दरअसल, मौलाना नियामी लाहौर के एक उदारवादी मौलवी थे और तालिबान के ख़िलाफ़ वह शुरू से ही आवाज़ उठाते रहे हैं. नियामी मानते थे कि जिहाद महज़ कोई राज्य ही चला सकता है और तालिबान जैसे आतंकी संगठनों को जिहाद चलाने का हक़ नहीं है. इसके साथ ही नियामी ने यह फतवा भी जारी किया था कि आत्मघाती हमले ग़ैर-इस्लामी हैं. अपने इस रुख़ के कारण जहां नियामी समाज के कई मॉडरेट मुल्लाओं के बीच जगह बनाने में कामयाब हुए थे, वहीं तालिबान को उनका विरोध अखरने लगा. लिहाजा, तालिबान ने उन्हें क़त्ल कर साफ कर दिया कि तालिबानी-जिहाद का विरोध करने वालों को तालिबान साफ कर देगा. फिर भी, इसमें कोई हैरत की बात भी नहीं कि तालिबान किसी मुल्ला या मौलवी पर हमला कर सकता है. पाकिस्तान के आतंकवाद में एक तस्वीर अधिक साफ नहीं हुई है कि यहां आतंकवाद का ज़हर किस हद तक सामुदायिक फ़िरक़ापरस्ती से जुड़ा है. यह फ़िरक़ापरस्ती जो न केवल शिया-सुन्नी झगड़े तक सीमित हैं, बल्कि सुन्नियों में भी बरेलवी और दूसरे संप्रदायों के लिए देवबंदियों की नफ़रत इस बात को साफ कर देती है. समाज में कुछ मुसलमानों को क़ाफ़िर करार देकर समाज से काट दिया जाना और उनके क़त्ल को वाजिब ठहराना कोई नई बात नहीं है.

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर, इराक़ सबसे अहम उदाहरण है जहां अल-क़ायदा ने लगातार मुसलमानों की हत्या को जायज़ ठहराया है. वहीं पाकिस्तान में ऐसा उदाहरण स्वात के पीर में देखने को मिलता है जहां मौलाना फजलुल्लाह और उसका तहरीक़ -ए-तालिबान लगातार मुसलमानों का कत्ल कर रहा है और उसे जायज़ ठहरा रहा है. ख़ास तौर पर पिछले दिसंबर का वह हादसा जिसमें तहरीक़ -ए-तालिबान ने पीर सामिउल्लाह और उसके लड़ाकों पर हमला बोल दिया और कई लड़ाकों को बड़ी बेरहमी के साथ मार डाला.

इसके बाद जब तहरीक़ -ए-तालिबान को पता चला कि लड़ाई में पीर सामिउल्लाह की मौत हो गई तो उसने पीर की लाश को क़ब्र से बाहर निकाल कर इसलिए टांग दिया कि लोगों को संदेश दिया जा सके कि तालिबान का विरोध करने पर सबको यही अंजाम भुगतना होगा. इसके साथ ही यह भी माना जा रहा है कि तहरीक़ -ए-तालिबान के दक्षिणी वजीरिस्तान का कमांडर कारी हुसैन उर्फ उस्ताद-ए-फिदाईन ने कई गुमराह लड़कों को कुछ ख़ास मुल्लाओं और मौलवियों के क़त्ल के फरमान के साथ भेजा हुआ है.

हमें एक अवाम के नाते इन दरिंदगी भरे हमलों का क्या जवाब देना चाहिए? इसमें कोई शक़ नहीं है कि तालिबान सेना के ऑपरेशन के ख़िलाफ़ ज़्यादा आक्रामक तेवर दिखाएगा और देश की सुरक्षा व्यवस्था को हिला कर रख देगा. मुल्लाह नियामी का क़त्ल ज़ाहिर तौर पर दुखद है, लेकिन उनकी शहादत के बाद लोगों में तालिबान से कोई डर नहीं दिखा. मदरसे के बड़े-बूढ़े मौलवी, छात्र और युवा-जिनमें इस घटना से काफी आक्रोश है-अपने दुख का इज़हार करने के लिए मदरसे में जमा हुए और तालिबान की दहशतगर्दी का सामना करने का हौसला उनकी आंखों में साफ देखने को मिला.

हाल के महीनों के अख़बारों और पाकिस्तान के ब्लॉग्स पर नज़र डालें तो ज़ाहिर होता है कि तालिबान के ख़िलाफ़ इस युद्ध को आतंक के ख़िलाफ़ युद्ध की तरह देखा जा रहा है. इस युद्ध को नॉर्थ वेस्ट पाकिस्तान के लोगों के दिल और दिमाग़ को जीतने के साथ-साथ जागरूकता के लिए भी युद्ध भी कहा जा रहा है. अख़बारों के संपादकीय दलील दे रहे हैं कि पाकिस्तान की सेना, तालिबान से यह युद्ध पाकिस्तान की सरज़मीं की हिफाज़त, मानवीय अधिकारों की सुरक्षा, बेहतर और उत्तरदायी सरकार की संकल्पना और पाकिस्तान के आधिपत्य को फिर से स्थापित करने के लिए लड़ रहा है. हाल के दौर में छप रही किताबों में साफ संकेत दिए जा रहे हैं कि तालिबानी पैदल लड़ाके दरअसल वे युवा हैं, जिन्हें रुपये की लालच और देश में किसी नौकरी के अभाव में गुमराह किया गया है. वास्तव में देखा जाए तो पिछले कुछ महीनों में तालिबान के ख़िलाफ़ इस लड़ाई में किसी तरह के विचारधारात्मक पहलू को नजरअंदाज किया गया है.

लाहौर के जामिया नाइमिया मस्ज़िद पर जुमा के रोज़ हुए हमले में जहां प्रमुख मौलवी डॉ सरफ़राज़ नाइमी की मौत हो गई, वहीं यह हमला साफ तौर पर ज़ाहिर करता है कि तालिबान के ख़िलाफ़ चल रही यह लड़ाई, इस्लाम के भविष्य के लिए हो रही है. इस युद्ध का नतीजा तय करेगा कि पाकिस्तान के आने वाले दिनों में इस्लाम का क्या स्वरूप होगा और इस्लाम को कैसे व्याख्यायित किया जाएगा. यह सब कुछ केवल विचार का अंतर है. अगर हम जिहाद को देखें तो जिहाद की सबसे पहली और निर्विरोध मान्यता है कि युद्ध के ज़रिए जिहाद की मंजूरी केवल इमाम दे सकता है और वह इमाम आज के संदर्भ में एक न्यायसंगत सरकार है. युद्ध के ज़रिए जिहाद की मंजूरी केवल उस हालत में दी जा सकती है, जब किसी आक्रमण को रद्द करना हो या फिर किसी अत्याचारी और कट्टर शासक को गद्दी से हटाना हो. इस्लाम में माना जाता है कि जिहाद का सर्वोच्च स्वरूप अपने आप को पाक करने के लिए, शांति से प्रचार करने और ख़ुदा के नेक कामों में अपना योगदान देने के लिए है. इस्लाम के मुताबिक, एक संगठित सेना की मौजूदगी में आम जनता जिहाद के ज़रिए अपना चरित्र निर्माण करते हुए अपनी क्षमता को बढ़ाने का काम करे, पाक क़ुरान के संदेश का प्रचार करे और उन लोगों की मदद करे जो अत्याचार का शिकार बन रहे हैं. लेकिन, तालिबान के जिहाद में ख़ुदा के नेक और पाक कामों की जगह आत्मघाती हमलों ने ले ली है. पिछले कुछ महीनों की घटनाएं, मसलन, निज़ाम-ए-अदल समझौते पर उठा विवाद और तालिबान को आतंकी गतिविधियों के लिए मुहैया कराए जा रहे पैसे, ने कई पाकिस्तानियों को तालिबानी मंसूबों पर सोचने पर मजबूर कर दिया है. कुछ इलाक़ों में आतंकवादियों को पैसे और ताक़त के भूखे क़बाइली सरदार के तौर पर देखा जा रहा है. ये क़बाइली सरदार आतंक के ज़रिए उन इलाक़ों पर अपना कब्ज़ा जमाना या बनाए रखना चाहते हैं जहां बेशक़ीमती ख़ज़ाने मौजूद हैं (स्वात में पन्ना की खान). लेकिन, जुम्मा-ए-रोज़ के धमाकों ने साफ कर दिया है कि तालिबानी आतंकवादी विस्तृत विचारों के साथ एक कट्टर इस्लाम, जिसकी परिकल्पना उन्होंने ख़ुद की है, थोपना चाहते हैं. डॉ. नईमी का क़त्ल इसलिए नहीं किया गया कि वह तालिबानियों को पैसे, ज़मीन, हथियार और गोला-बारूद या फिर लड़ाकों की सेना में नई भर्ती कराकर मदद कर सकते थे. उनका क़त्ल इसलिए किया गया कि वह तालिबान के मंसूबों का विरोध कर रहे थे, तालिबानी विचारों को नकार रहे थे और उसे ग़ैर-इस्लामी करार दे रहे थे.

> **पाकिस्तान का तालिबानीकरण अपने चरम पर है और ये शैतान पाकिस्तान को तबाह करने की पूरी कोशिश कर रहे हैं. इन धमाकों को अंजाम देकर आतंकी शैतानों ने साफ कर दिया है कि अपने मंसूबों को पाने के लिए वे इंसानियत की हर सरहद पार कर सकते हैं. जुम्मा-ए-रोज़,12 जून 2009 को, लाहौर और नोशेरा में हुए धमाकों ने इन शैतानी आतंकियों के वहशीपन और दरिंदगी को हमारे सामने रख दिया. इन दोनों हमलों में पाक मस्ज़िद और मदरसे को निशाना बनाया गया.**

डॉ. नईमी न तो पहले मुल्ला हैं जिन्होंने कट्टर इस्लामिक विचारधारा का विरोध करके अपनी जान गंवाई हैं और न ही वह आख़िरी हैं. दरअसल कट्टर इस्लाम का विरोध करने वाले मुल्लों और मौलवियों का क़त्ल करने का काम अफ़ग़ानी तालिबान पिछले कई वर्षों से करता आया है. अफ़ग़ानिस्तान में उलेमा शूरा-जो दो हज़ार मौलवियों का संगठन है जो तालिबानी जिहाद का शुरू से विरोध कर रहा है- के मौलवियों का क़त्ल आतंकवादी बराबर कर रहे हैं. उलेमा शूरा का हामिद करजई सरकार को समर्थन देना और इस्लाम की एक उदारवादी परिभाषा को मान्यता देना तालिबानियों को शुरू से अखरता रहा है और वह समय-समय पर शूरा के बड़े मौलवियों की जुबान बंद करने के लिए उनका क़त्ल करता रहा है.

भले या बुरे के लिए, यह वक़्त है जब पाकिस्तानियों को अहसास है कि एक बार राह-ए-रस्त ऑपरेशन ख़त्म होने के बाद भी तालिबान के ख़िलाफ़ जारी जंग को विचारों के स्तर पर लड़ा जाएगा. जुम्मा के रोज़ हुआ धमाका इस बात का गवाह है कि विचारों का स्तर केवल मुहावरों और कहावतों के लिए नहीं है और न ही वे शोध और विश्वविद्यालयों में बहस के मसले मात्र हैं. विचारों की यह लड़ाई मस्ज़िदों और मदरसों की शक्ल ले लेगा. सूफ़ी इबादतगार पहले ही यह शक्ल पा चुके हैं. हाल में विश्लेषकों ने राजनेताओं और राजनीतिक दलों के उस रुख़ का विरोध किया, जिसमें वे मज़हबी काउंसिलों के साथ तालिबान के विरोध में नज़र आए. मसलन, एमक्यूएम होने के दावे के बावजूद उलेमाओं की सभा इसलिए बुलाई कि वे तालिबान का विरोध कर सकें. उसी तरह, पाकिस्तान सरकार ने भी हाल में सात सदस्यीय सूफ़ी काउंसिल का गठन किया जिसका मक़सद तालिबानीकरण को रोकने के लिए सूफ़ी विचारधारा का प्रचार करना है. ये कोशिशें इसलिए ग़लत हैं, क्योंकि वह एक ऐसे देश पर मज़हबी गवर्नेंस की एक और परत चढ़ाता है, जो पहले से ही मज़हबी विवादों के चलते टूट की कगार पर खड़ा है. यह नई कोशिश, एक बार फिर मज़हब और राज्य को एक पायदान पर लाकर खड़ी कर देती है. इसमें कोई शक़ नहीं कि पाकिस्तान सरकार की यह कोशिश कि वह एक तरह के उदारवादी इस्लाम को मान्यता देकर कट्टर इस्लाम को क़ाबू करे, एक ख़तरनाक कोशिश है. लेकिन जो लोग वास्तव में पाकिस्तानी तालिबान का ख़ात्मा चाहते हैं- लिबरल, मॉडरेट और वे जो मज़हब को राजनीति से अलग रखना चाहते हैं, उनको विचारों के स्तर पर होने वाले युद्ध से नहीं बचना चाहिए. साफ तौर पर देखा जा सकता है कि पाकिस्तान को आतंकवाद से आज़ाद कराने की कोशिश में इस्लाम की आत्मा को झिंझोड़ा जाना तय है. इसके लिए उस सैनिक कार्रवाई जो तालिबानी आतंक के तरीक़ों से निबट रही है, के साथ-साथ पाकिस्तान सरकार और अवाम को एकजुट होकर इस जिहाद के ज़रिए तालिबानी मानसिकता को हराने की ज़रूरत है.

सभी फोटो- पीटीआई

feedback.chauthiduniya@gmail.com

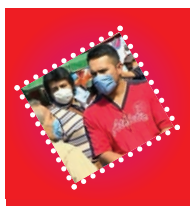

दुनिया

स्वाइन फ्लू की चपेट में भारत भी आया

स्वाइन फ्लू (एच1एन1) ने धीरे-धीरे विश्व के लगभग 76 देशों में अपने पैर पसार लिए है. लोग दहशत के साए में जी रहे हैं. इसकी चपेट में आए लोगों की मौत भी हो रही हैं. अब तक पूरी दुनिया में स्वाइन फ्लू की गिरफ़्त में 36,000 लोग आ चुके हैं. 150 से अधिक लोगों को अपनी जान से हाथ धोना पड़ा है.

बिमलेश झा

हाल ही में विश्व स्वास्थ्य संगठन ने स्वाइन फ्लू को विश्वव्यापी महामारी घोषित किया है. इसके सबसे ज़्यादा मामले मेक्सिको और अमेरिका में मिले हैं. धीरे-धीरे यह विश्व के अन्य देशों में अपना पैर पसार रहा है. चीन, जापान और भारत में स्वाइन फ्लू ने दस्तक दे दी है. हालांकि इसे गंभीरता से लेते हुए स्वास्थ्य मंत्रालय ने रोकथाम के उपाय शुरू कर दिए हैं.

स्वाइन फ्लू (एच1एन1) ने धीरे-धीरे विश्व के लगभग 76 देशों में अपने पैर पसार लिए हैं. लोग दहशत के साए में जी रहे हैं. इसकी चपेट में आए लोगों की मौत भी हो रही है. अब तक पूरी दुनिया में स्वाइन फ्लू की गिरफ़्त में 36,000 लोग आ चुके हैं. 150 से अधिक लोगों को अपनी जान से हाथ धोना पड़ा है. अगर देखा जाए तो इससे प्रभावित देशों में कोहराम मचा हुआ है. वैसे सामान्य फ्लू की तरह ही स्वाइन फ्लू भी जानलेवा नहीं है. फिर इसको लेकर इतनी अफरातफरी क्यों मची है? इसलिए कि सामान्य फ्लू अधिक से अधिक पूरे परिवार में फैल सकता है, लेकिन स्वाइन फ्लू बड़ी तेज़ी से फैलता है. देश में स्वाइन फ्लू के अब तक लगभग तीन दर्जन मामले आ चुके हैं.

क्या है बीमारी का इतिहास : स्वाइन इंफ्लूएंजा को सबसे पहले आदमी से जुड़ी बीमारी के रूप में 1918 की महामारी के बाद प्रस्तावित किया गया, जब इससे प्रभावित होकर सूअरों के साथ-साथ इंसान भी बीमार पड़ने लगे. वैसे तो, सबसे पहले यह वायरस एक सूअर में पाया गया. यह बीमारी इंसान तक कैसे पहुंची, इसकी खोज जारी है. फ़िलहाल, तो यही माना जाता है कि सूअरों के साथ रहने वाले इंसानों को ही इसका संक्रमण होता है. अमूमन स्वाइन इंफ्लूएंजा को ही स्वाइन फ्लू, हॉग फ्लू और पिग फ्लू कहते हैं. इंफ्लूएंजा तीन प्रकार के होते हैं इंफ्लूएंजा वायरस ए, इंफ्लूएंजा वायरस बी और इंफ्लूएंजा वायरस सी. इंफ्लूएंजा वायरस ए के भी पांच प्रकार हैं. इनको एच1एन1, एच1एन2, एच3एन1, एच3एन2 और एच2एन3 आदि के नाम से जाना जाता है. स्वाइन इंफ्लूएंजा अमेरिका, मैक्सिको, कनाडा, दक्षिणी अमेरिका, यूरोप, केन्या और पूर्वी एशिया में पाए जाने वाले सूअरों में सामान्य तौर पर पाया जाता है.

इसकी गंभीरता को देखते हुए विश्व स्वास्थ्य संगठन ने स्वाइन फ्लू को लेकर अंतिम स्तर की चेतावनी जारी की है. ग़ौरतलब है कि 41 साल में विश्व स्वास्थ्य संगठन ने पहली बार इस तरह की फ्लू के अंतिम स्तर व छठे स्तर की चेतावनी जारी की है. हालांकि विश्व स्वास्थ्य संगठन ने इसके पहले 1968 में हांगकांग फ्लू के समय इस तरह की अंतिम स्तर की चेतावनी जारी की थी. तब फ्लू ने पूरी दुनिया में दस लाख लोगों की ज़िंदगी ली थी.

वैसे एच1एन1, उतना प्रभावी नहीं है और एंटी-वायरल टामिफ्लू से यह एकदम ठीक हो जाता है. हालांकि इसकी कोई गारंटी नहीं है कि यह वायरस ख़तरनाक रूप नहीं लेगा और टामिफ्लू दवा हमेशा प्रभावी रहेगी ही. दस टामिफ्लू गोलियों की क़ीमत तीन हज़ार रुपये है. इसलिए इससे बचाव का सबसे बेहतर उपाय सावधानी बरतना है.

क्या हैं स्वाइन फ्लू के लक्षण : बुख़ार, भूख न लगना, खांसी, नाक बहना, मिचली, डायरिया वगैरह. ये लक्षण सामान्य फ्लू से मिलते-जुलते हैं. इसके साथ ही अगर निमोनिया हो जाए तो बीमार व्यक्ति की मौत तक हो सकती है. हर साल दुनिया में सामान्य फ्लू से ढाई से पांच लाख लोगों की मौत हो जाती है. यह फ्लू मौसमी फ्लू जितना ही ख़तरनाक है.

कैसे फैलता है : यह इस बीमारी से ग्रसित व्यक्ति की छींक से फैल सकता है. इसलिए प्रभावित व्यक्तियों के संपर्क में आने से बचें.

इलाज : सामान्य फ्लू की तरह ही इसका इलाज एंटी वायरल टामिफ्लू (ओसटामिवीर) है. यह प्रभावी भी है. यह सोचना ग़लत है कि दवा पहले खा लेंगे तो इस बीमारी से बच जाएंगे. इसके मनमाने प्रयोग से इसका असर ख़त्म हो सकता है.

मंत्रालय की तैयारी :
एम-95 मास्क डॉक्टरों और नर्सों के लिए कवच का काम करता है. मतलब यह कि इस मास्क के कारण ही डॉक्टर और नर्स इसके वायरस से बचते हैं, क्योंकि यह बहुत ही तेज़ी से फैलने वाली बीमारी है. स्वाइन फ्लू से पीड़ित व्यक्तियों के इलाज में लगे डॉक्टर और नर्स के लिए सरकार ने एम-95 मास्क मंगवाया है, यह मास्क सूक्ष्म से सूक्ष्म वायरस को फैलने से रोक देता है. जबकि साधारण मास्क धूल के सूक्ष्म कणों को भी रोकने में असफल रहता है. मास्क के अलावा दस्ताने, हेड कैप, चश्मा, और गाउन का भी पूरा स्टॉक तैयार किया गया है. फ़िलहाल स्वास्थ्य मंत्रालय के पास टामिफ्लू के दस लाख डोज उपलब्ध है. इससे एक लाख लोगों का इलाज किया जा सकता है.

रोकथाम : वैसे किसी भी बीमारी या रोग से बचने के लिए सबसे बेहतर उपाय सतर्कता और सावधानी है. छींकने के बाद क्या करना चाहिए.

1. अपने हाथ और साथ रखे जाने वाले रूमाल पर न छींकें.
2. इस्तेमाल के बाद फेंक दिए जाने वाले रूमाल या टिशू पेपर पर ही छींकें. उस पर एक बार छींकने के बाद उसे फेंक दें.
3. टिशू पेपर नहीं रहने की स्थिति में कंधे के ऊपर छींके, जिससे वायरस ज़मीन पर गिरकर मर जाएगा.
4. छींकने के बाद किसी को छुएं नहीं, साबुन से हाथ धो लें. छींकने के बाद संक्रमण का ड्रॉपलेट तीन फीट के दायरे में फैलता है. इसलिए किसी भी खांसने या छींकने वाले व्यक्ति से छह फीट की दूरी बनाएं रखें.

स्वाइन फ्लू भारत में भी अपने पैर पसार रहा है. जालंधर के एक स्कूल से अमेरिका (नासा) गए छात्रों की घर वापसी पर आठ छात्रों में स्वाइन फ्लू का वायरस पाए जाने से पहले दिल्ली में दो, तमिलनाडु में दो, मुंबई में एक और बंगलुरू में भी स्वाइन फ्लू का एक मामला मिलने से लोग सकते में हैं. वैसे यह बीमारी बहुत तेज़ी से फैलने वाली है. समय रहते इसकी रोकथाम की व्यवस्था नहीं की गई तो इसके परिणाम घातक हो सकते हैं. हालांकि अहतियात के तौर पर स्वास्थ्य मंत्रालय ने कुछ क़दम उठाए हैं.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

बच्चों में हृदय रोग का ख़तरा

हमारा बचपन ख़तरे में है. हाल ही में हुए एक अंतरराष्ट्रीय शोध के मुताबिक 2010 तक भारत में दुनिया के 60 फीसदी दिल के मरीज़ हो जाएंगे. ऐसे में आने वाली पीढ़ी को हृदय रोग से बचाना महत्वपूर्ण भी है और एक चुनौती भी. आमतौर पर बच्चों में होने वाले हृदय रोगों को पहचानना कठिन होता है. माता-पिता इन रोगों को पहचान नहीं पाते और इलाज में देरी के कारण ही रोग ज़्यादा नुकसानदेह हो जाते हैं. कभी-कभी तो अनदेखी के कारण ही ये बीमारियां जीवन के लिए भी ख़तरा बन जाती हैं. दरअसल अभिभावक पहचान ही नहीं पाते कि उनका लाड़ला किन परिस्थितियों से जूझ रहा है. हृदय की परेशानियों से होनवाले दुष्परिणाम गांव में अधिक देखने को मिलते हैं, जहां लोग कम पढ़े-लिखे होते हैं. पहले बच्चे का जन्म आसान और सुविधाजनक तरीक़े से घर में ही होता था. समय के साथ प्रजनन को लेकर तमाम जटिलताएं सामने आने लगी हैं. इस वजह से यह ज़रूरी है कि गर्भवती महिला अपना और होनेवाले बच्चे का ध्यान रखने के लिए डॉक्टरी सलाह लेती रहे और नियमित जांच भी कराती रहे. कई बच्चों को हृदय रोग जन्मजात होते हैं तो कई को बाद में यह रोग होता है. गर्भधारण के चौथे सप्ताह में गर्भ में बच्चे की बनावट एक नली यानी ट्यूब जैसी होने लगती है और आठवें हफ़्ते में यह ट्यूब बढ़कर मुड़ जाती है. उसके बाद इस नली के बीच से एक झिल्ली निकलकर नीचे और ऊपर के भाग को अलग कर देती है. इसके बाद कोशिका से बना वाल्व बन जाता है और इसी के ज़रिए हार्ट-चेंबर, फेफड़ों और शरीर में ख़ून का बहाव होने लगता है. गर्भ में प्लेसेंटा, जहां से गर्भ में पल रहे बच्चे तक खाना पहुंचता है, के ज़रिए ही ऑक्सीजन और कार्बन डाईऑक्साइड का आना-जाना होता है. हृदय रोग में दिल के ज़रिए ख़ून के साधारण तरीक़े से बहाव में बाधा उत्पन्न हो जाती है. हर धड़कन के साथ दिल का दायां हिस्सा शरीर से ऑक्सीजन रहित ख़ून लेकर फेफड़ों तक पहुंचाता है. बाईं तरफ़ का हृदय फेफड़ों से

ऑक्सीजेनेटड ख़ून लेकर शरीर को भेजता है. दोनों ओर के ख़ून को मिलने से बीच की झिल्ली बचाती है. कई बच्चों की झिल्ली के ऊपर या नीचे छेद होता है, जिससे दाएं और बाएं हिस्से का ख़ून मिल जाता है. ऐसे में ऑक्सीजन रहित और ऑक्सीजन वाला ख़ून मिलकर ऑक्सीजन के बहाव को बाधित कर देती है. इससे शरीर में ऑक्सीजन की कमी हो जाती है और सांस लेने में परेशानी होती है. इस छेद को भरना बहुत ज़रूरी होता है. जन्म के बाद बहुत जल्द ऑपरेशन करके इस छेद को बंद कर दिए जाने से जीवन में आगे चलकर कोई परेशानी नहीं आती है.

बच्चों में दो तरह के हृदय रोग के लक्षण होते हैं. बच्चे में हृदय रोग पहचानने के लिए कुछ चीज़ों पर ध्यान दें :

1. पहले तरह का हृदय रोग होने पर बच्चा नीला पड़ जाता है. चेहरे और शरीर के साथ जीभ, नाख़ून और होंठ भी नीले हो जाते हैं, इसके साथ ही बच्चा अक़्सर बेहोश हो जाता है. इस स्थिति में शिशु को जल्द अस्पताल ले जाने की ज़रूरत होती है. ऐसे बच्चों का ज़िंदगी के पहले साल में ही ऑपरेशन करना ज़रूरी होता है.
2. दूसरे तरह के हृदय रोग में शिशु को दूध पीने में परेशानी, दूध पीते हुए पसीना आता है और वजन कम हो जाता है, साथ ही थकान भी होती है. इस तरह की परेशानी में बच्चे के जन्म के पहले कुछ महीनों में चिकित्सा आवश्यक है. अपोलो अस्पताल के चाइल्ड हार्ट व पेडियाट्रिक्स विभाग के विभागाध्यक्ष डा. विकास कोहली के अनुसार जन्म के बाद तुरंत चिकित्सा करा देने से परेशानी हमेशा के लिए ख़त्म हो जाती है.

बच्चों के हृदय रोग का उपचार दो तरीक़े से हो सकता है. पहला एंजियोग्राफी और दूसरा एंजियोप्लास्टी. एंजियोग्राफी में बीमारी का पता लगने पर बच्चे को हॉस्पिटल में रखना पड़ता है. इस तरह के इलाज में बच्चे के दिल के छेद को तार डालकर बंद कर देते हैं. इसके बाद तक़रीबन एक हफ़्ते तक बच्चे को डॉक्टर की निगरानी में अस्पताल में ही रहना पड़ता है. यह ऐसी प्रक्रिया है जिसमें चीर-फाड़ करनी पड़ती है. जबकि एंजियोप्लास्टी में किसी भी तरह की चीर-फाड़ नहीं होती और बच्चा एक से दो दिनों में सामान्य हो जाता है. इसमें किसी तरह के चीर-फाड़ करने की ज़रूरत नहीं होती है. यह ऑपरेशन दूरबीन के तरीक़े से की जाती है. यह बेहद आसान और सुविधाजनक तरीक़े से होता है. आख़िरी बात यही कि दिल की बीमारियों को जल्द से जल्द समझकर उनका इलाज करा देने में ही समझदारी है.

रीतिका सोनाली

ritika.chauthiduniya@gmail.com

दूरस्थ शिक्षा माध्यम है तो क्या ग़म है

रीतिका सोनाली

दूरस्थ शिक्षा माध्यम यानी पत्राचार को लेकर कुछ समय पहले तक देश में अच्छी राय नहीं हुआ करती थी, लेकिन बदलते वक़्त के साथ बदलती परिस्थितियों को देखते हुए इनकी महत्ता बढ़ी है. सूचना क्रांति ने दूरस्थ शिक्षा के मायने ही बदल दिए हैं. शिक्षा के स्वरूप, उद्देश्य और माध्यमों में भी काफी बदलाव आया है. इस बात से भी इंकार नहीं किया जा सकता कि जितने विद्यार्थी हर साल बारहवीं पास करते हैं, उन सबके लिए हमारे रेग्युलर कॉलेजों में जगह नहीं है. ऐसे में कई छात्रों के लिए दूरस्थ शिक्षा एक बेहतर विकल्प के तौर पर उभर रही है. अब कहीं भी रहकर पत्राचार से शिक्षा प्राप्त करना कॉरेसपॉन्डेंस मैटेरियल तक ही सीमित नहीं रह गया है. अब तो टेलीकांफ्रेंसिंग और मोबाइल के ज़रिए भी दूरस्थ शिक्षा (डिस्टेंस एजुकेशन) का लाभ बख़ूबी उठाया जा रहा है. दूरस्थ शिक्षा माध्यम में विद्यार्थी को नियमित तौर पर संस्थान में जाकर पढ़ाई करने की ज़रूरत नहीं होती है. हर कोर्स के लिए क्लासेज की संख्या तय होती है और देश भर के कई सेंटरों पर उनकी पढ़ाई होती है. विजुअल क्लासरूम लर्निंग, इंटरैक्टिव ऑनसाइट लर्निंग और वीडियो कांफ्रेंसिंग के ज़रिए विद्यार्थी देश के किसी भी राज्य में रहकर घर बैठे पढ़ाई कर सकते हैं. वे अपनी ज़रूरत के अनुसार अपने पढ़ने की समय-तालिका बना सकते हैं. डिस्टेंस एजुकेशन काउंसिल के मुताबिक आगामी पांच सालों में देश के उच्च शिक्षा संस्थानों में दाख़िले के प्रतिशत को 10 से 15 प्रतिशत करने के राष्ट्रीय लक्ष्य को पूरा करने में दूरस्थ शिक्षा का योगदान उल्लेखनीय होगा. डिस्टेंस लर्निंग एजुकेशन की लोकप्रियता का अंदाज़ा इसी से लगाया जा सकता है कि उच्च शिक्षण संस्थानों के हर पांच विद्यार्थियों में से एक दूरस्थ शिक्षण प्रणाली का होता है. समाज के सभी तबकों को समान शिक्षा दिए जाने की जो बात हम करते हैं, दूरस्थ शिक्षण से ही फलीभूत हुआ लगता है.

फ़ायदे

दूरस्थ शिक्षा के माध्यम से पढ़ाई करने के कई फ़ायदे हैं. यदि आप जॉब करने के साथ-साथ पढ़ाई करना चाहते हैं तो इसमें कोई परेशानी नहीं होती है. चूंकि इस तरह की शिक्षा में नियमित तौर पर शिक्षण संस्थान जाने की ज़रूरत नहीं पड़ती है. इसका एक और फ़ायदा है कि कम अंक आने पर भी मनपसंद कोर्स में दाख़िला मिल जाता है. इसके साथ ही इस माध्यम से पढ़ाई करने की फीस भी काफी कम है. डिस्टेंस एजुकेशन ऐसी व्यवस्था है जिसमें किसी भी कोर्स के लिए उम्र बाधा नहीं होती है, इसलिए बढ़ती उम्र में भी यदि पढ़ने का शौक हो या किसी कारणवश पढ़ाई पहले छोड़नी पड़ी हो तो वह पूरी की जा सकती है. दूर-दराज़ के इलाक़ों में जहां महिलाओं का घर से बाहर निकलकर पढ़ाई कर पाना संभव न हो, वहां भी पत्राचार के माध्यम से पढ़ाई पूरी की जा सकती है.

मान्यता

पत्राचार से किए गए कोर्सों की मान्यता कहीं कम नहीं आंकी जाती है. ये भी उतने ही महत्वपूर्ण होते हैं जितने की रेग्युलर कोर्स. इस माध्यम से शिक्षा प्राप्त करने पर भी आगे की पढ़ाई करने में कोई परेशानी नहीं आती है. बस यह ध्यान रखा जाए कि जिस यूनिवर्सिटी के तहत एडमिशन लेने जा रहे हों, वह यूजीसी से मान्यता प्राप्त हो. कई जगहों पर पत्राचार से प्रोफेशनल कोर्स करने वालों के लिए प्रोफेशनल अनुभव की भी मांग होती है.

कोर्स व विश्वविद्यालय

अब शिक्षा का उद्देश्य केवल पढ़कर जानकारी हासिल करना या डिग्री प्राप्त करना नहीं है. हर तरह की पढ़ाई रोज़गारपरक हो गई है. ऐसे में केवल रेग्युलर कोर्स ही नहीं, पत्राचार द्वारा कराए जा रहे कोर्सों में भी इस बात पर ध्यान दिया जा रहा है. देश के उन सभी विश्वविद्यालयों में, जहां पत्राचार से पढ़ाई होती है, उनमें लगातार नए कोर्स जुड़ रहे हैं. कई यूनिवर्सिटी में वोकेशनल, प्रोफेशनल और साधारण कोर्स भी होते हैं. दूरस्थ शिक्षा माध्यम से किए जाने वाले कोर्स की अवधि रेग्युलर के बराबर या उससे कुछ ज़्यादा होती है. देश भर में लगभग 14 यूनिवर्सिटीज़ ऐसे हैं जिनमें पत्राचार से पढ़ाई कराई जाती है. इनके अलावा देश भर में 54 लर्निंग सेंटर्स भी हैं. दूरस्थ शिक्षण संस्थानों पर डिस्टेंस एजुकेशन काउंसिल की लगाम रहती है. इन संस्थानों से विद्यार्थी न सिर्फ़ डिग्री कोर्स 'ग्रेजुएट, पोस्ट-ग्रेजुएट, एमफिल, पीएचडी' बल्कि डिप्लोमा और सर्टिफिकेट कोर्सेज़ भी कर सकते हैं. डिग्री कोर्स के लिए बारहवीं, पोस्ट-ग्रेजुएट कोर्स के लिए ग्रेजुएट और डिप्लोमा व सर्टिफिकेट कोर्सेज़ में दाख़िले के लिए कोई तय योग्यता नहीं है. हालांकि यह संबंधित संस्थान पर भी निर्भर करता है कि वहां इनके लिए क्या योग्यता तय की गई है. इन कोर्सों को करने के बाद रेग्युलर कोर्स की तरह ही नौकरी के लिए प्रयास कर सकते हैं.

वक़्त की कद्र

दूरस्थ शिक्षा माध्यम से पढ़ाई करने वाले विद्यार्थियों को वक़्त की कद्र करने की ज़रूरत होती है. चूंकि इसका तरीक़ा बेहद सुविधाजनक होता है, इसलिए इसमें अपनी सुविधानुसार पढ़ाई की जा सकती है. हालांकि ख़ुद ही अनुशासन और रूटीन बनाए रखना मुश्किल होता है पर इस तरह की पढ़ाई की प्रणाली के साथ बेहतरीन टाइम मैनेजर होना बहुत ज़रूरी होता है. इसका कोर्स भी रेग्युलर कोर्स की तरह ही होता है और इस अनुपात में क्लास की पढ़ाई कम होती है तो यह विद्यार्थी पर निर्भर करता है कि वह पढ़ाई में अनुशासन बनाए रखे. इससे आगे चलकर किसी तरह की परेशानी से बचा जा सकता है और अंक भी अच्छे पाए जा सकते हैं.

ritika.chauthiduniya@gmail.com

फोटो- प्रभात पाण्डेय

दूरस्थ शिक्षा की सुविधा वाले देश के कुछ बड़े विश्वविद्यालय

■ इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय ■ दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली (स्कूल ऑफ ओपन लर्निंग) ■ नेताजी सुभाष मुक्त विश्वविद्यालय, कोलकाता ■ यशवंत राव चव्हान मुक्त विश्वविद्यालय, नासिक, महाराष्ट्र ■ कोटा मुक्त विश्वविद्यालय, राजस्थान ■ नालंदा मुक्त विश्वविद्यालय, बिहार

हाथों की लिखावट में छिपी है करियर की बुलंदी

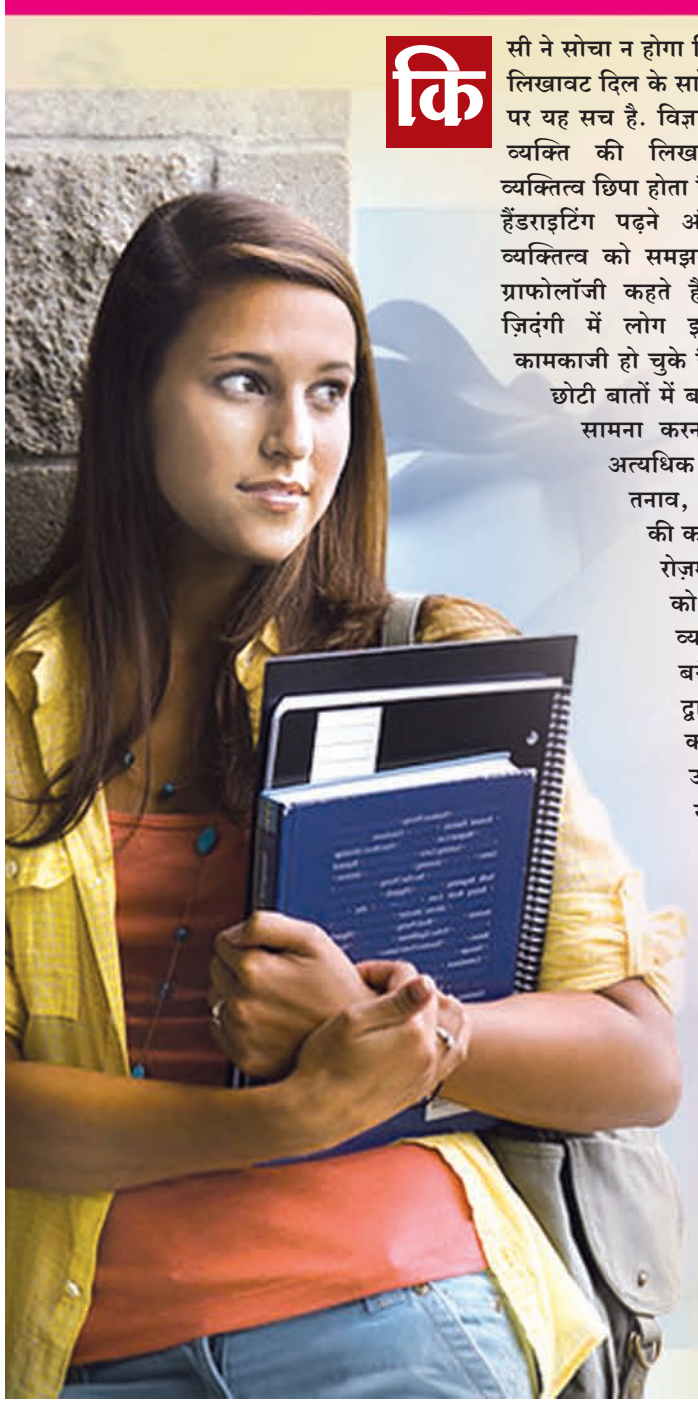

किसी ने सोचा न होगा कि कभी हाथों की लिखावट दिल के सारे राज़ खोल देगी, पर यह सच है. विज्ञान के अनुसार भी व्यक्ति की लिखावट में उसका व्यक्तित्व छिपा होता है. लिखावट यानी हैंडराइटिंग पढ़ने और इसके ज़रिए व्यक्तित्व को समझने की पढ़ाई को ग्राफोलॉजी कहते हैं. आजकल की ज़िंदगी में लोग इतने व्यस्त और कामकाजी हो चुके हैं कि उन्हें छोटी-छोटी बातों में बड़ी परेशानियों का सामना करना पड़ता है जैसे अत्यधिक काम के दबाव से तनाव, अवसाद और नींद की कमी आदि. ऐसी ही रोज़मर्रा की समस्याओं को हल करने के लिए व्यक्ति को पता चले बग़ैर ग्राफोलॉजी द्वारा परिस्थितियों का पता लगाकर उसका इलाज संभव हो पाता है.

कोर्स

ग्राफोलॉजी में व्यक्ति का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करना सिखाया जाता है. कोर्स के दौरान व्यक्ति को मानसिक बीमारियों के बारे में पता लगाना भी सिखाया जाता है. इन दिनों ग्राफोलॉजी का सबसे बेहतर इस्तेमाल व्यक्ति के चरित्र को सुधारने के लिए हो रहा है जिसे ग्राफोथेरॉपी कहते हैं. इसके तहत व्यक्ति की लिखावट का तरीक़ा बदलकर उसकी पर्सनैलिटी में भी बदलाव लाया जाता है. यह ग्राफोलॉजी के पाठ्यक्रम का अहम हिस्सा है.

हर पढ़ाई की तरह इसके भी मौलिक आधार होते हैं, जिसे मानने के लिए व्यक्ति बाध्य होता है. वैसे जीवन के कई पहलुओं को बताने के बाद भी यह व्यक्ति की जाति, लिंग, रंग, भाई-बहनों में क्रमांक संख्या या भविष्य की बातें नहीं बता सकता है. इससे केवल व्यक्ति के सामाजिक रिश्ते, जीवन व समय बचाने का तरीक़ा, स्वाभिमान का विकास, सोचने का तरीक़ा, भय व हर्ष की स्थिति को जाना जा सकता है. प्रसिद्ध करियर काउंसलर प्रवीण मल्होत्रा का कहना है कि इस कोर्स के साथ यदि फॉरेंसिक साइंस का कोर्स किया जाए तो वह सोने पर सुहागा होगा.

योग्यता

ग्राफोलॉजी की पढ़ाई के लिए किसी शैक्षणिक योग्यता से ज़्यादा ज़रूरी है इस विषय में रुचि होना. विभिन्न तरह के लोगों के बारे में जानकारी प्राप्त करने और उनके व्यक्तित्व का अध्ययन करने का शौक़ इस विषय की पढ़ाई के लिए आवश्यक माने जाते हैं. वैसे लिखावट के आधार पर छोटे-छोटे अक्षरों में लिखने वाले इस पढ़ाई के लिए अव्वल होते हैं, क्योंकि ग्राफोलॉजी में यह माना जाता है कि जिसकी लिखावट छोटे अक्षरों की होती है वह अंतर्मुखी होता है. उसका दिमाग़ एकाग्र, तेज़, बुद्धि प्रबल और मन सुदृढ़ होता है. ये सभी गुण ग्राफोलॉजी के लिए बेहद फलदाई साबित होते हैं.

संस्थान

वैसे हमारे देश में अभी कम ही संस्थान हैं जो ग्राफोलॉजी का प्रशिक्षण देते हैं. इस क्षेत्र में देश का बेहतरीन संस्थान विशाखापतनम के हैंडराइटिंग अनालिस्ट ऑफ इंडिया को माना जाता है. इसके तहत तीन महीने से लेकर एक वर्ष तक की शिक्षा नियमानुसार पाने का प्रावधान है. दूसरा बेहतरीन संस्थान है दिल्ली स्थित ग्राफोलॉजी इंडिया डॉट कॉम, जहां से दो कोर्स होते हैं. लेखनी के बेसिक जानने के लिए केवल 750 रुपये में तीन हफ़्तों का अमेच्योर क्विक ग्राफोलॉजी लर्नर कोर्स, और दूसरा लेखनी के तमाम तकनीकों को जानने का चौबीस हफ़्तों में पूरा होने वाला सर्टिफिकेशन कोर्स इन ग्राफोलॉजी, केवल 3,500 रुपये में किया जा सकता है.

इसके अलावा एम. जे. राजौर ग्राफोलॉजी संस्थान भी प्रतिष्ठित है. साथ ही बेंगलुरू के कई कॉलेज जैसे धर्मराज कॉलेज, श्रीभगवान महावीर जैन कॉलेज, हैंडराइटिंग इंस्ट्रीट्यूट ऑफ इंडिया व अन्य से इसके शार्ट-टर्म कोर्स किए जा सकते हैं.

अवसर

इस पढ़ाई को पूरा करने के बाद ग्राफोलॉजिस्ट किसी व्यक्ति के मस्तिष्क की वर्तमान स्थिति, उसके प्रियजनों से उसके मन की नज़दीकियां व दूरियों को भी आंक सकता है. ग्राफोलॉजी की ज़रूरत आम लोगों के बीच देखी जा रही है. ऐसे में यह तेज़ी से उभरता हुआ क्षेत्र है. ग्राफोलॉजी में निपुण व्यक्ति की आवश्कता हर बड़ी कंपनियों में पड़ने लगी है, क्योंकि आजकल कर्मचारियों को काम पर रखने के लिए इस टेस्ट में उत्तीर्ण होना भी आवश्यक माना जाने लगा है जिससे पद के लिए उपयुक्त कर्मचारी का चुनाव हो सके.

आजकल सबसे ज़्यादा परेशानी रिश्ते निभाने में है, ऐसे में किसी काउंसलिंग कंपनी के साथ जुड़कर या अपनी काउंसलिंग कंपनी खोलकर लोगों की समस्या उजागर कर निदान कर सकते हैं. इसकी विश्वसनीयता देखकर सभी फॉरेंसिक जांच केंद्रों में भी हैंडराइटिंग अनालिस्ट की ज़रूरत होने लगी है. यही नहीं, पश्चिमी देशों में तो ग्राफोलॉजी मनोविज्ञान के अंतर्गत आने वाले एक विषय के रूप में उभर रहा है, ऐसे में विदेशों में भी इस कोर्स के बाद रोज़गार की प्रबल संभावनाएं नज़र आती हैं.

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback.chauthiduniya@gmail.com

1984 सिख दंगा

त्रिलोकपुरी में मौत का नंगा नाच

फोटो–*प्रभात पाण्डेय*

अब तक नहीं भरे हैं घाव

पिछली बार आपने पढ़ा

इंदिरा गांधी की उनके ही एक सिख अंगरक्षक द्वारा हत्या करने के बाद, 1984 में जो सिख विरोधी दंगे और सुव्यवस्थित तरीक़े से सिखों का संहार हुआ, वह भारतीय इतिहास में सबसे काले अध्याय के रूप में दर्ज़ है. आधिकारिक आंकड़ों के मुताबिक अकेले दिल्ली में 2733 पुरुषों, औरतों और बच्चों को मौत के घाट उतार दिया गया. वैसे मरने वालों की वास्तविक संख्या शायद इससे ज़्यादा भी हो सकती है. यहां डरावना सन्नाटा पसरा हुआ था. हवा भी मानो सहम कर चल रही थी. माहौल में मानो दहशत और डर घोल दिया गया था. इंदिरा गांधी की उनके एक अंगरक्षक ने हत्या कर दी, यह ख़बर देश के कोने-कोने में पहुंच चुकी थी. शाम पांच बजे तक त्रिलोकपुरी और पूर्वी दिल्ली के चारों ओर के इलाक़े में हलचल मची हुई थी, लेकिन 31 अक्टूबर 1984 की शाम को उस क्षेत्र में एक परिंदा भी पर नहीं मार सका. इस मध्यम वर्गीय क्षेत्र में सिखों की संख्या काफी अधिक थी. इनमें से अधिकतर छोटे-मोटे दुकानों के मालिक थे. जैसे ही ख़बर उन तक पहुंची, उन लोगों ने अपनी दुकानें बंद कर घर की ओर चल दिए. अफवाहें तेज़ी से फैलती रहीं. किसी ने कहा सिख उत्सव मना रहे थे तो किसी ने कहा कि सिखों ने लड्डू बांटे. इस तरह की अफवाहों का दौर चलता रहा.

अर्जुन भगत

वास्तविकता कुछ और थी. सिख परिवारों के पुरुष, औरत और बच्चे घरों में बंद हो गए. कुछ गुरुद्वारों में रहने चले गए. वह समुदाय भयभीत और तनावग्रस्त था. वयस्क शायद ही खाते थे और रात-रात भर जगते थे. जैसे ही सुबह का उजाला फूटा, कुछ ने ख़ुद को दिलासा देना शुरू कर दिया कि सबसे बुरा पल बीत चला है. आख़िरकार, रात किसी न किसी तरह बीत ही गई थी. पूरी रात लूटपाट और दंगे की एकाध ही घटना हुई थी. अधिकतर सिखों को यह विश्वास था कि इस दुखद घटना के बाद भी दिल्ली शांत रहेगी, क्योंकि यह भारत की राजधानी है. पुलिस और प्रशासन 24 घंटे के अंदर स्थिति पर क़ाबू पा सकता है. हालांकि, यह विश्वास झूठा ही साबित हुआ.

दिल्ली में ख़ूनी खेल की शुरुआत इंदिरा गांधी की हत्या के 24 घंटे बाद हुई. पहले सिख की हत्या एक नवंबर की सुबह 10 बजे हुई. त्रिलोकपुरी में सुबह दस बजे के बाद हिंसा भड़क उठी. उपद्रवियों ने लोहे की छड़ों, तलवार, मिट्टी के तेल और बंदूकों से लैस होकर सिखों के घरों पर हमला करना शुरू कर दिया. उपद्रवी पूरी तरह तैयार थे और इसका नेतृत्व कांग्रेस के प्रमुख नेता कर रहे थे. इनमें रामपाल सरोज (इलाक़े के कांग्रेस अध्यक्ष), डॉ. अशोक गुप्ता (एमसीडी में पार्षद) शामिल थे. स्पष्ट रूप से उस रात पूर्वी दिल्ली के कांग्रेस सांसद एचकेएल भगत ने अपने समर्थकों को सिखों से बदला लेने के लिए उकसाया और एकत्रित किया. जब उपद्रवियों ने सिखों के घरों पर हमला करना शुरू किया तो उन्होंने इसका कड़ा विरोध किया. बहुत सिख परिवारों ने अपनी रक्षा की और उपद्रवियों को भागने के लिए मजबूर किया. हालांकि, उपद्रवियों का अधिक संख्या में आना जारी रहा. उपद्रवियों की योजना दरवाजे तोड़कर लूटपाट करने की थी. उसके बाद पुरुषों को मारना शुरू किया. बहुतों को ज़िंदा ही जला दिया. इसके बाद घरों को जलाने लगे. कई मामलों में बच्चों और महिलाओं को नहीं बचाया जा सका. त्रिलोकपुरी में उपद्रवियों को कोई जल्दबाज़ी नहीं थी. वे इंतज़ार कर रहे थे. हालात को देख रहे थे. एकजुट होकर हमला करने की तैयारी में थे.

सिखों को भागने के लिए कोई जगह नहीं बची थी. उन लोगों ने सभी गलियों को घेर लिया था. समय के साथ मौत का नंगा नाच और प्रचण्ड व उग्र हो रहा था. ब्लॉक में धुएं के बादल एक किलोमीटर दूर से देखे जा सकते थे और हवा में मांस के जलने की बदबू आ रही थी. यह नरसंहार ब्लॉक 32 में दिनदहाड़े इत्मीनान से किया गया. कल्याणपुरी पुलिस स्टेशन ने कोई कार्रवाई नहीं की, जो उसके क्षेत्र के नज़दीक था. एसएचओ सूर वीर सिंह त्यागी ने कल्याणपुरी जाना भी ज़रूरी नहीं समझा. कुछ समय बाद उन्होंने पत्रकारों से कहा कि उस क्षेत्र में शांति है. क्या यह नरसंहार एक नवंबर को ही ख़त्म हो गया? यहां तक कि इस सवाल को भी नहीं पूछा गया. दो नवंबर को दिन के दो बजे तीन पत्रकार त्रिलोकपुरी पहुंचे. इसमें *इंडियन एक्सप्रेस* के जोसेफ मैलियकन व राहुल बेदी और *जनसत्ता* के आलोक तोमर थे. पुलिसकर्मियों ने उन्हें यह कहा कि यहां सिर्फ़ दो लोगों की मौत हुई है. उन्होंने इसको सच नहीं माना और नरसंहार के सबूत ख़ुद तलाशने के लिए खोजबीन शुरू कर दी.

उन्हें झुलसी और जली हुई लाशें मिलीं. इनमें से कुछ शवों को ट्रक में रखा गया था. ये तीनों पत्रकार सीधे पुलिस हेडक्वार्टर गए, जो यहां से कुछ ही दूरी पर था. आफिसर सेवा दास जिला के इंचार्ज थे और निखिल कुमार– जो बाद में पुलिस कमिश्नर बने और हाल में कांग्रेस के एमपी भी– को व्यक्तिगत तौर पर सूचना दी गई. नरसंहार को रोकने के लिए कुछ भी नहीं किया, जो अगले 24 घंटे (3 नवंबर) तक जारी रहा. कुल मिलाकर ब्लॉक 32 में 400 पुरुषों, बच्चों और महिलाओं को मौत के घाट उतार दिया गया. आधिकारिक आंकड़ों के मुताबिक दिल्ली में कुल 2733 लोगों की हत्या हुई, जिनमें 1234 लोगों की हत्या सिर्फ़ पूर्वी दिल्ली में हुई.

क्या भारत में हुए इस वीभत्स नरसंहार की ज़िम्मेदारी लेने के लिए कोई है? न ही एक पुलिसकर्मी, न ही एसएचओ, न ही डीसीपी. इस दुखद अध्याय के दौरान कई अधिकारी दिल्ली में ही तैनात थे. सभी को अपनी ज़िम्मेदारी नहीं निभाने के बदले पुरस्कृत किया गया. लेकिन यह अगले लेख के लिए. मैंने सूचना के अधिकार के तहत दूसरे प्रश्न के साथ एक प्रश्न यह भी पूछा कि दंगे के दौरान पूर्वी दिल्ली में पुलिस क्या कर रही थी. इस पर जो जवाब मुझे डीसीपी ऑफिस से मिला मैं उसे लिख रहा हूं– पुलिस बल ने अपने कर्तव्य को क़ानून के दायरे में रह कर निभाया. ठीक इसी प्रश्न के दूसरे जवाब में कहा गया कि दिल्ली पुलिस के अफसर 1984 दंगे के दौरान निष्पक्ष और प्रशंसनीय काम करते रहे. अगर न्याय करना आप पर होता, अगर दिल्ली पुलिस ने क़ानून के अंदर कार्रवाई की होती और अगर वे निष्पक्षता के साथ अपने कर्त्तव्य को अच्छे तरीक़े से निभाते. लेकिन प्रसिद्ध लेखक विलियम डेलरिंपल ने अपनी किताब *सिटी ऑफ जिन्स– ए ईयर इन डेल्ही* में इस नरसंहार को दूसरे रूप में बताया है. जब बाहरी दुनिया ने पहली बार इस नरसंहार के बारे में जाना तो, यह ब्लॉक 32 ही था, जो सुर्खियों में था. कुत्तों को मानव की आंतों को नोचते देखा गया. झुलसा और जला हुआ शव नाली में बह रहा था. तेल और पेट्रोल की गंध अब भी हवा में घुली हुई थी. सिखों को ज़िंदा जलाने से पहले उनके बाल काट दिए जाते थे, जिससे बाहर बालों का अंबार लगा हुआ था.

मैं निश्चित हूं कि इतिहास दिल्ली पुलिस की भूमिका को लेकर कभी उसकी बड़ाई नहीं करेगा. विडंवना यह है कि किसी को भी इसके लिए दोषी और ज़िम्मेदार नहीं ठहराया गया है. शायद इसलिए दिल्ली पुलिस अपनी भूमिका पर इस तरह की प्रतिक्रिया दे रही है. यह डरावना और ख़ौफ़नाक है, क्योंकि अगर हम इतिहास से नहीं सीखेंगे तो यह निश्चित रूप से अपने को दोहराएगा.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

मेरी दुनिया.... हम नहीं बदलेंगे – वामदल ...धीर

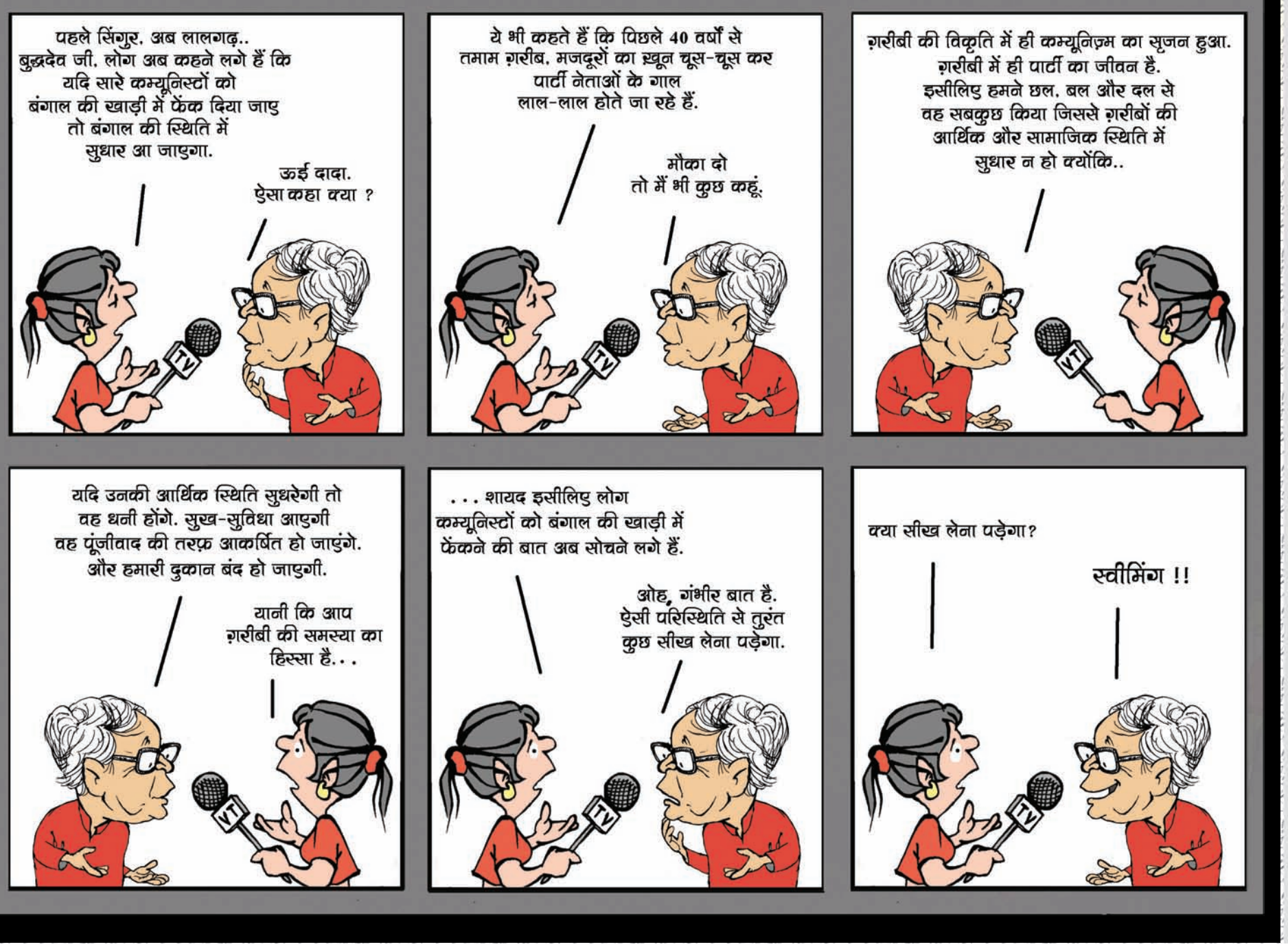

राशिफल

(29 जून से 5 जुलाई तक)

मेष (21 मार्च से 20 अप्रैल)
अधिक ख़र्च न करें. ज़रूरत है धन को बचाने की. इस सप्ताह आर्थिक लाभ के योग बन रहे हैं. अपनों से सावधान रहें, नहीं तो मुश्किल में पड़ सकते हैं. ऐसा कोई काम न करें, जिसमें जोख़िम अधिक हो. सप्ताह के अंत तक कोई सुखद समाचार मिलेगा. व्यवसाय में लाभ मिल सकता है, पर संभलकर निवेश करें.

वृष (21 अप्रैल से 20 मई)
यात्रा का योग बन रहा है. जिस काम से आप बाहर जाएंगे, उसमें आपको सफलता नहीं भी मिल सकती है. बेकार के कामों में अपना समय बर्बाद न करें. समय का सदुपयोग करें, नहीं तो दिक़्क़त आ सकती है. जीवन साथी का भरपूर सहयोग मिलेगा. आंख से संबंधित कोई बीमारी हो सकती है.

मिथुन (21 मई से 20 जून)
यह सप्ताह मिथुन राशि वालों के लिए अच्छा रहेगा. कार्यालय में आपको तरक़्क़ी मिल सकती है. इससे आपके मान-सम्मान में वृद्धि होगी. रुका हुआ काम भी पूरा होगा. जो योजना आप बना रहे हैं, उसमें सफल होंगे. संबंधों में मधुरता आएगी. समाज में आपका मान-सम्मान बढ़ेगा. व्यवसाय के क्षेत्र में भी लाभ मिलेगा.

कर्क (21 जून से 20 जुलाई)
आपको संयम बरतने की ज़रूरत है. अपनी बोली पर नियंत्रण रखें. यही आपको सफलता के द्वार तक पहुंचाएगी. पिता या किसी सीनियर का भरपूर सहयोग मिलेगा. ज़्यादा भावुक होने की ज़रूरत नहीं. विपरीत परिस्थितियों में भी धैर्य से काम लें. छोटी-छोटी बातों पर ध्यान न दें. इससे तनाव बढ़ेगा.

सिंह (21 जुलाई से 20 अगस्त)
इस सप्ताह आप कोई ऐसा काम न करें, जिससे आपको बेवजह परेशानी और तनाव का सामना करना पड़े. लेन-देन के विवाद से दूर रहना ही बेहतर होगा. आपका रुका हुआ जो काम था, वह पूरा होगा. जीवनसाथी का भरपूर सहयोग मिलेगा. व्यवसाय क्षेत्र में निवेश के लिए सही वक़्त नहीं है.

कन्या (21 अगस्त से 20 सितंबर)
कार्य की व्यस्तता अधिक रहेगी. इस वजह से आपका दूसरा काम भी प्रभावित होगा, लेकिन आपको मनोरंजन का अवसर मिलेगा. मन प्रसन्न रहेगा. वाहन चलाते समय सावधानी बरतने की ज़रूरत है. सगे संबंधियों के मिलने से मन प्रसन्न रहेगा. संतान के दायित्व की पूर्ति होगी.

तुला (21 सितंबर से 20 अक्टूबर)
विपरीत परिस्थितियों में अपनों का सहयोग मिलने से आप राहत महसूस करेंगे. आप कुछ ऐसा काम करेंगे, जिससे ख़ुद ख़ुश नहीं रहेंगे. आर्थिक मामलों पर किया जा रहा प्रयास सफल होगा. इस मसले पर किसी जानकार या पिता से सलाह लें. उसके बाद ही इस दिशा में कुछ क़दम उठाएं. मनोरंजन के अवसर भी मिलेंगे.

वृश्चिक (21 अक्तूबर से 20 नवंबर)
सफलता प्राप्त करने के लिए आप को अधिक मेहनत करनी पड़ेगी. स्थान परिवर्तन की संभावना है. अगर इस दिशा में प्रयास कर रहे हैं तो कामयाबी मिलेगी. संतान के व्यवहार से आप चिंतित रहेंगे. आर्थिक तथा व्यावसायिक योजना सफल होगी, लेकिन अपने बिज़नेस पार्टनर से सचेत रहें.

धनु (21 नवंबर से 20 दिसंबर)
यह समय धनु राशि वालों के लिए बेहतर नहीं है. अपने सामान की सुरक्षा के प्रति सचेत रहने की ज़रूरत है. धनहानि के योग बन रहे हैं. इसलिए लापरवाही न बरतें. परिवार के अन्य सदस्यों के साथ अच्छा समय गुज़रेगा. देवदर्शन के लिए तीर्थस्थान भी जा सकते हैं. कहीं भी जाएं, सुरक्षा के प्रति सचेत रहें.

मकर (21 दिसंबर से 20 जनवरी)
आपको अपनी मेहनत के बल पर सफलता मिलेगी. प्रतियोगिता परीक्षा का परिणाम आपके पक्ष में होगा. किसी पर अधिक विश्वास करना आपके लिए तक़लीफ देने वाला हो सकता है. इसलिए किसी पर ज़्यादा विश्वास न करें. जीवनसाथी का सहयोग और प्रोत्साहन मिलेगा. व्यवसाय के लिए उपयुक्त समय नहीं है.

कुंभ (21 जनवरी से 20 फरवरी)
कोई भी काम सोच-विचार कर करें. उसके दोनों पहलू को देखिए, तब कोई ठोस निर्णय लें. वैसे भाग्य आपके साथ है. इसलिए ज़्यादा चिंतित होने की ज़रूरत नहीं है. इस सप्ताह कोई अधूरा काम बनेगा, जिससे आप काफी ख़ुश रहेंगे. मनोरंजन के सुखद अवसर प्राप्त होंगे.

मीन (21 फरवरी से 20 मार्च)
कुछ भी सोच समझकर बोलिए. वाणी में मधुरता लाने की ज़रूरत है. यही आपको सम्मान और लाभ दिलाएगी. कार्य क्षेत्र में किया जा रहा प्रयास सफल होगा. कोई कार्य बिना सोचे समझे न करें. अनचाही यात्रा करनी पड़ सकती है. व्यवसाय के क्षेत्र में लाभ की संभावना है.

चौथी दुनिया ब्यूरो

feedback.chauthiduniya@gmail.com

चलता हूं दोस्त...देख लेना

अनंत विजय

हर दिन की तरह बुधवार को भी मैं अपने दफ्तर(एक टीवी चैनल) में रन डाउन की बगल की अपनी सीट पर बैठा था. अचानक पीछे से किसी ने मेरे कंधे पर हाथ रखा और पीछे से आवाज़ आई– अच्छा दोस्त चलता हूं, तड़का के दो सेगमेंट निकल गए हैं, बाक़ी देख लेना. मैं जब तक पीछे मुड़ता, तब तक शैलेंद्र जी हाथ हिलाते हुए न्यूज़रूम से बाहर की तरफ़ चल पड़े थे. तड़का फिल्मी दुनिया पर हमारे चैनल पर चलने वाला एक शो है, जिसे शैलेंद्र जी तैयार करते थे. उस दिन से पहले ऐसा कभी नहीं हुआ था कि शैलेंद्र घर जाते वक़्त मुझे कहें कि देख लेना. सब कुछ सामान्य ढंग से ख़त्म हुआ. फाइनल बुलेटिन ख़त्म करने के बाद मैं लगभग एक बजे घर पहुंचा. लगभग ढाई बजे तक रात की पाली के प्रोड्यूसर से सुबह की बुलेटिन की योजना पर बात होती रही और फिर अख़बार वगैरह पलटने के बाद सो गया. सुबह साढ़े चार बजे के क़रीब मोबाइल की घंटी बजी और दफ्तर के एक सहयोगी ने सूचना दी कि नोएडा एक्सप्रेस वे पर शैलेंद्र जी के साथ दुर्घटना हो गई है और वह ग्रेटर नोएडा के शारदा अस्पताल में भर्ती हैं. इस ख़बर के बाद दफ्तर में फोन मिलाया तो जानकारी मिली कि रात तक़रीबन ढाई बजे शैलेंद्र जी की गाड़ी की टक्कर ट्रक से हो गई है. टक्कर इतनी ज़बरदस्त थी कि उनकी कार ड्राइवर की सीट तक ट्रक के नीचे घुस गई थी. राह चलते लोगों ने जब तक शैलेंद्र जी को उनकी कार से निकाल कर पास के अस्पताल में पहुंचाया तब तक बहुत देर हो चुकी थी. ख़ून इतना बह चुका था कि उनको बचाना नामुमकिन था. सुबह लगभग साढ़े पांच बजे शैलेंद्र जी ने अंतिम सांस ली. शैलेंद्र जी की मौत से हम सब लोग स्तब्ध थे और किसी को कुछ समझ नहीं आ रहा था. अस्पताल में ज़रूरी काग़ज़ी कार्रवाई के बाद शैलेंद्र जी का शव पोस्टमॉर्टम हाउस पहुंचा. पोस्टमॉर्टम हाउस में ताला लटका था और पहले से ही तीन लाशें वहां पोस्टमॉर्टम के इंतज़ार में रखी थीं. चूंकि पत्रकारों की पूरी बिरादरी वहां मौजूद थी इसलिए नोएडा पुलिस ने पोस्टमॉर्टम हाउस का ताला तो तोड़ डाला, लेकिन अंदर के हालात ऐसे नहीं थे कि शैलेन्द्र जी को अंदर लिटाया जा सके. तय हुआ कि शव को एंबुलेंस में रखा जाए और डॉक्टर को तलाशने के अलावा अन्य सरकारी कार्रवाई शुरू की जाए. कुछ लोग डॉक्टर को बुलाने में जुटे, तो एक कांस्टेबल पोस्टमॉर्टम के काग़ज़ात पर मुख्य चिकित्सा अधिकारी के दस्तखत कराने रवाना हुआ. दो घंटे बीत चुके थे. धूप तेज़ होने लगी थी. ज़रूरी काग़ज़ातों पर सरकारी अधिकारियों के दस्तख़त लेने गया कांस्टेबल लापता हो चुका था. इंस्पेक्टर विनय राय उसको फोन लगाकर परेशान, लेकिन फोन मिल ही नहीं रहा था. घंटे भर बाद कांस्टेबल नमूदार हुआ. अब काग़ज़ात थे, लेकिन डॉक्टर नहीं. आधे घंटे बाद डॉक्टर आए और अगले 20–25 मिनट में पोस्टमॉर्टम की प्रक्रिया ख़त्म हो गई. तपती गर्मी में पोस्टमॉर्टम के लिए तीन से चार घंटे का इंतज़ार. यह हाल उत्तर प्रदेश के सबसे विकसित शहर नोएडा का था तो और शहरों में क्या स्थिति होगी इसकी कल्पना मात्र से रूह कांप जाती है. यह एक ऐसी संवेदनहीन व्यवस्था का बदसूरत चेहरा था जो हर दिन दुखी परिवार को मुंह चिढ़ाता है.

अव्यवस्था का आलम यह कि शव को रखने का कोई इंतज़ाम नहीं. न ही साफ सफाई, और न ही शव को सुरक्षित रखने का कोई उपकरण या फिर बर्फ का ही इंतज़ाम. संवेदनहीनता इतनी कि डॉक्टर को देर से आने का मलाल नहीं, वह तो पत्रकारों की वजह से थोड़ी जल्दी यानी लगभग घंटेभर पहले पहुंचा था. पोस्टमॉर्टम होने के बाद शैलेंद्र जी के शव को कैलाश अस्पताल के शवगृह में रखवा दिया गया. तय हुआ कि जब उनके रिश्तेदार आ जाएंगे तो शुक्रवार की सुबह निगम बोध घाट पर उनका अंतिम संस्कार किया जाएगा. शाम को जब दफ्तर पहुंचा तो वहां अजीब सी मुर्दनी छाई थी, सबके चेहरे पर गहरे अवसाद को साफ तौर पर देखा जा सकता था. मैं अपनी सीट पर बैठा था. पीछे से शैलेंद्र जी की

ओबिच्युरी (मृत्यु–पाठ) तैयार होने की आवाज़ आ रही थी.

जो यह करा रहा था, उसने बताया कि पैकेज का वॉयस ओवर करने वाले साथी फफक–फफक कर रो रहे थे. दफ्तर में अजीब सा माहौल था. सब एक–दूसरे को देख रहे थे और अपना ग़म छुपाने की कोशिश भी कर रहे थे. अचानक मेरे वरिष्ठ पास आकर बोले कि शैलेंद्र को सुर्ख़ियों में ले लीजिए. यह वाक्य ऐसा था, जिसे सुन कर मन अंदर तक कांप गया. कल तक जो हमारे साथ बैठा करते थे आज उन्हीं पर हेडलाइन लिखनी पड़ेगी. मन बेचैन था, कंप्यूटर खुला था, पांच बजने में कुछ मिनट रह गए थे, मुझे शैलेंद्र जी वाली ख़बर को हेडलाइन में लेना था. घड़ी की सुई बढ़ती जा रही थी, हाथ को जैसे लकवा मार गया था, कुछ भी नहीं सूझ रहा था– नहीं रहे शैलेंद्र जी– के बाद लिखने के लिए शब्द नहीं सूझ रहे थे. इस बीच हमारे संपादक आशुतोष मेरे पास आए और मेरा हौसला बढ़ाने लगे. किसी तरह से हेडलाइन भी लिखी, उन पर बुलेटिन भी चलाया और जब पहली बार उनके न रहने की ख़बर बुलेटिन में चली तो पूरे न्यूज़रूम में सन्नाटा और उसको चीरती हुई सिसकियां सुनाई दे रही थीं. हमारे पेशे की एक ऐसी बिडंबना है, जिस पर हम रो तो सकते हैं, रुक नहीं सकते. चाहे जो हो जाए, बुलेटिन नहीं रुक सकता.

हम लोग जब उनके अंतिम संस्कार के लिए दिल्ली के निगम बोध घाट पहुंचे, तब तक नहा कर मंत्रोच्चार के बीच शैलेंद्र जी के शव को चिता पर रखा जा चुका था. मैं किसी काम से ऊपर चला गया था और जब वापस घाट पर लौट रहा था तो देखा कि दो–तीन लोग शैलेंद्र जी के छह साल के छोटे बेटे को सफेद कुर्ता–पायजामा पहनाने और बाल काटने पर आमादा थे. वह मासूम बच्चा जो अब तक नहीं समझ पाया था कि उसको बेहद प्यार करने और उसकी हर ख्वाहिश पूरी करनेवाला उसका पिता इस दुनिया से जा चुका है, उसको अपने पिता को मुखाग्नि देने के लिए तैयार किया जा रहा था. वह कह रहा था कि मैं क्यों बदलूं कपड़े, मैंने तो अच्छी जींस पहन रखी है, मुझे नहीं पहनना कुर्ता–पायजामा, मुझे नहीं कटवाने अपने बाल. वह रो रहा था और कुछ लोग उसके साथ ज़बरदस्ती तो कुछ प्यार–मनुहार कर रहे थे. सदमे में मैं नीचे आया और अपने वरिष्ठ सहयोगी प्रबल जी और संजीव से कहा कि उस बच्चे के साथ जो हो रहा है उसको रोकिए. दोनों ने धर्म के नाम पर हो रहे इस कर्मकांड को रोकने की भरसक कोशिश की लेकिन शैलेंद्र जी के एक रिश्तेदार ने लगभग चीखते हुए कहा कि हिंदू धर्मशास्त्रों के अनुसार बेटा इसलिए पैदा किया जाता है कि वह अपने पिता को मुखाग्नि दे सके एक बार फिर से धर्म की आड़ में मासूम पर अत्याचार. विरोध का स्वर भी तीखा था, लेकिन समाज के कुछ धर्मभीरु लोग भी खड़े थे. बीच का रास्ता निकाला गया और बच्चे को सिर्फ़ सफेद कुर्ता पहनाकर चिता का स्पर्श करा दिया गया.

शैलेंद्र जी की मौत ने एक बार फिर से धर्म के नाम पर खेल खेलने वालों को बेनकाब किया. हिंदू धर्म और उसके ग्रंथों को व्याख्यायित कर हर रोज़ धर्म पर कार्यक्रम बनाने वाले शैलेंद्र जी ने कभी सोचा भी नहीं होगा कि उनके प्यारे बेटे के साथ धर्म के नाम पर उनके ही रिश्तेदार संवेदनहीनता की पराकाष्ठा पार कर जाएंगे. शैलेंद्र जी के लिए धर्म का तो यह मतलब नहीं ही रहा होगा. हिंदू धर्म के नाम पर अनपढ़ लोग हमेशा कुछ ऐसा कर गुजरते हैं जिससे धर्म में हमारे जैसे लोगों की आस्था कम हो जाती है. आज जब मैं अपनी उसी सीट पर बैठकर शैलेंद्र जी के निधन के बहाने संवेदनहीन व्यवस्था और अत्याचारी धार्मिक कर्मकांड पर लिख रहा हूं तो लगता है कि शायद पीछे से फिर शैलेंद्र जी आकर कंधे पर हाथ रखेंगे और कहेंगे –चलता हूं दोस्त, देख लेना.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

जाति का ज़हर कैसे फैला?

व्यालोक

सनातन धर्म का सबसे निंदनीय पक्ष निस्संदेह जाति–प्रथा ही है. आज तो ख़ैर जाति की व्यवस्था निंदित है ही, टूट भी रही है. हमने पहले भी बताया है कि वर्ण का मतलब जाति से नहीं है. साथ ही, जाति का जो बंधन हम आज देखते हैं, वह भी पहले नहीं था. एक से दूसरी जाति में अतिक्रमण बेहद आसान था, अंतर्जातीय विवाह भी ख़ूब होते थे. वर्ण–व्यवस्था से जाति तक का सफ़र वैदिक युग के बाद और पुरोहितों के वर्चस्व के दौरान हुआ. उसके बाद मनु ने अपनी स्मृति के द्वारा यह बंधन और कठोर कर दिया. मनुस्मृति के बाद ही यह ज़रूरी हो गया कि जिस जाति के लिए जो कर्म और बंधन निर्धारित किए गए हैं, उस जाति में उत्पन्न इंसान उसी काम को करे. दसवीं सदी–यानी शहाबुद्दीन गोरी के आक्रमण– तक भी जाति की व्यवस्था ढीली–ढाली ही चलती रही. उस समय तक ग़ैर–सनातनियों को सनातन धर्म में सम्मिलित किया जाता रहा है. इतिहासकार जयचंद्र विद्यालंकार ने इस बात का उल्लेख किया है कि ईस्वी 1178 में गुजरात के नाबालिग राजा मूलराज द्वितीय की मां से हारकर गोरी की मुस्लिम सेना का बहुत बड़ा अंश क़ैद हो गया था. इन क़ैदियों को भी सनातन धर्म में शामिल किया गया था. उनकी दाढ़ी वगैरह कटवा कर पराजित सेना के सरदारों को तो क्षत्रिय बना लिया गया और साधारण सिपाहियों को कोलियों, खांटों, मेड़ों और बाब्रियों में शामिल कर लिया गया.

पुराने ज़माने में इतने बंधन नहीं थे. असवर्ण विवाह ख़ूब होते थे और शूद्रों के हाथ से भी ब्राह्मण और द्विज जातियां पकवान ग्रहण कर लेती थीं. आख़िर जाति–प्रथा की शुरुआत के पीछे आर्यों का (यदि उन्होंने इसकी शुरुआत की) ध्येय भी कुछ ऐसा नहीं था कि वे छुआछूत से बच सकें. उनका तो एकमात्र लक्ष्य यह था कि तमाम जातियों के लोगों को वे अपने रंग में रंगना चाहते थे. यही वजह रही कि जो भी उनकी सभ्यता और संस्कृति को अपना लेता था, उनकी समाज में उन्नति आसानी से हो जाती थी. यह व्यवस्था आज भी चल रही है. आज भी जो तथाकथित नीची जातियां सामाजिक व्यवस्था में ऊपर उठना चाहती हैं, वे अखाद्य खाना और अपेय छोड़कर जनेऊ धारण कर लेती हैं और द्विज जातियों में शामिल हो जाती हैं.

सवाल यह उठता है कि आख़िर फिर यह बंधन इतने कड़े कैसे हो गए? अगर देखा जाए, तो बौद्धों और जैनों के सात्विक और शुद्धतावादी दर्शन से ही इसकी नींव पड़ी. अपने बौद्ध पड़ोसियों के आग्रह या कहें तो दबाव में आकर दूसरे सनातन धर्मावलंबियों ने मांस वग़ैरह खाना छोड़ा. यहीं से उच्चता और निम्नता की चर्चा शुरू हुई. जिस जाति के लोगों ने सब कुछ के बावजूद गोमांस खाना और मदिरा पीना जारी रखा, उस जाति को समाज में हीन समझा जाने लगा. साथ ही, जो लोग मोटा या हीन समझा जाने वाला काम (खाल उतारना, लाश जलाने में मदद करना आदि)–जिसमें शारीरिक श्रम की प्रधानता हो–करते थे, उनको भी समाज में हीन ही कहा जाने लगा.

मुग़लकाल तक तो यह जाति–व्यवस्था इतनी कड़ी, बंधी हुई और रूढ़िग्रस्त हो गई कि इंसान, इंसान को ही अछूत समझने लगा. इसके पीछे एक कारण तो इस्लाम और सनातन धर्म के आपसी संबंधों में ही खोजना चाहिए. ख़ैर, उस पर चर्चा बाद में. इस्लाम के भारत में प्रवेश के साथ ही सनातन धर्म में जाति–प्रथा पूरी तरह रूढ़ हो गई. अब लोगों का रोटी–बेटी का संबंध ही ख़त्म हो गया. रूढ़ियां बढ़ती गईं, सनातन धर्म का मूल स्वरूप खो गया, कर्मकांड पर ज़ोर बढ़ता चला गया और ज्ञान विलुप्त हो गया. हालात यहां तक बदतर हो गए कि आख़िर तेरहवीं–चौदहवीं शताब्दी में तो सनातन धर्म के अंदर से ही सुधार के लिए भक्ति–आंदोलन का सूत्रपात हो गया. दक्षिण में शुरू हुए आंदोलन को रामानंद उत्तर में ले आए (भक्ति द्राविड़ ऊपजी, लाए रामानंद) और फिर तो मानो कुरीतियों को ख़त्म करने के लिए आंदोलनों की झड़ी ही लग गई. कबीर, रैदास, नानक, दादूदयाल और न जाने कितने सुधारकों ने सनातन धर्म की कुरीतियों पर जमकर प्रहार किए और जाति–व्यवस्था को जमकर लताड़ा. अफसोस यही कि उसके बावजूद भी यह निकृष्ट प्रथा बची ही रह गई.

अंत में, कबीरदास के ही शब्दों में –जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान, मोल करो तलवार का, पड़न रही दो म्यान.

vyalok.chauthiduniya@gmail.com

पिछले अंक में आपने पढ़ा कि जहां इक़बाल भेसाड़िया की मदद से तस्करी करने लगा वहीं लेखक ने पत्रकारिता की दुनिया में अपना पहला क़दम रखा, आगे पढ़िए इस अंक में

मुसलमान

नहीं जाउंगा.– संक्षेप में इक़बाल ने अपना फ़ैसला सुना दिया. –पर हमारा घर कैसे चलेगा?

भीख मांग, भीख–पहले बुज़ुर्ग गुर्राए.

दूसरे ने थोड़ी नरमी से पूछा –क्या ग़रीबी का एक ही इलाज गुनाहख़ोरी है. अपनी क़ौम में सैकड़ों ग़रीब हैं, क्या वे सभी तस्करी कर अपना गुज़ारा करते हैं?

दो नंबर के रास्ते से फिसलकर इक़बाल फिर एक बार ख़ुदा की पसंदीदा राह पर आ गया. फिर संघर्ष शुरू हुआ. स्कूल का अंतिम वर्ष था. एस एस सी में फर्स्ट क्लास लेकर उसे कॉलेज में जाना था. पिता की आख़िरी ख्वाहिश उसे पूरी करनी थी.

मुझे (लेखक को) एस.एस.सी. पास करने की ज़रूरत नहीं थी. मेरे लिए एस एस सी के प्रमाणपत्र का कोई महत्व नहीं था. दूसरे जेजे स्कूल ऑफ आर्ट्स में नाम दर्ज़ करवाने के लिए उन दिनों (1954) एस एस सी के सर्टिफिकेट की ज़रूरत नहीं होती थी.

इस संबंध में मैंने डॉ.चीनवाला से सलाह ली (जाने–अनजाने उन्होंने मेरे स्वर्गीय पिता का स्थान ले लिया था). उन्होंने ज़ोर देकर कहा कि स्कूल की पढ़ाई अधूरी छोड़कर जे जे में दाख़िल होना उचित नहीं.

एस एस सी की परीक्षा के आड़े अब कितने दिन बचे हैं ? प्रश्न के साथ–साथ उन्होंने उत्तर भी दिया– सिर्फ़ पांच महीने.

इक़बाल मन लगाकर परीक्षा की तैयारी कर रहा था.

मैं बेमन से, जबरन. मेरी हालत उस कुली जैसी थी, जो गधे की तरह बोझा उठाकर पर्वतरोहियों के साथ शिखर की ओर आगे बढ़ता है. दूसरे, घर में पढ़ाई करने की सुविधा नहीं थी. न दिन में, न रात में. मैंने अपने कमरे से बाहर गलियारे के मद्धिम बल्ब के नीचे बैठकर पढ़ाई करनी शुरू कर दी.

आर्थिक दृष्टि से हमारे घर की हालत थोड़ी सुधरी थी. मेरे चाचा मोहम्मद हुसेन की ईमानदारी के कारण उनकी बंदरगाह की नौकरी की तनख्वाह में थोड़ा इज़ाफ़ा हुआ था. फिर भी घर का ख़र्च चलाने के लिए मेरी मां को अभी भी दूसरों के बरतन मांजने पड़ते थे. इसके अलावा मैं कार्टून बनाकर अपनी ज़रूरत भर का कमा लेता था. उसी वर्ष *चैत मछंदर* के संपादक शनि ने हर सप्ताह मेरी कार्टून पट्टी *बटुक भाई* प्रकाशित करनी शुरू की (जिसे आज हिंदी पाठक धर्मयुग के *ढब्बू जी* के नाम से जानते हैं.)

इक़बाल की हालत दिनोंदिन पतली होती जा रही थी. तस्करी के धंधे से जुटाई गई पूंजी धीरे–धीरे चुक रही थी. एस एस सी परीक्षाएं शुरू होने से पहले उसके घर की हालत सचमुच भिखमंगों जैसी हो गई और क्लास–टीचर ने चेतावनी दी, कल जो कोई छात्र परीक्षा–शुल्क नहीं भरेगा, उसे बोर्ड की परीक्षा में बैठने को नहीं मिलेगा. फीस सिर्फ़ सोलह रुपये थी. फीस भरने का कल आख़िरी दिन था. इक़बाल के पास सिर्फ़ बारह रुपये थे. बाक़ी चार का क्या? वह तेज़ी से सोच रहा था. इन चार रुपयों की कमी पूरी करने के लिए वह कुछ भी कर सकता था. पर किसी के आगे हाथ पसारना उसके स्वभाव में नहीं था.

स्कूल से छूटकर वह पालागली आया. वहां ख़ोजा मस्ज़िद के सामने एक फूलवाले की दुकान है. उसने देखा तो एक लड़का फूल का ऑर्डर लिखवा रहा था. फूलवाले ने हिसाब जोड़कर पेशगी के पैसे लिए और पांच का नोट लड़के को वापस लौटाया.

नोट और रसीद जेब में डालकर वह लड़का आगे बढ़ा. थोड़ी दूर जाने पर इक़बाल ने उसे घेरा और दो झापड़ मारकर पांच रुपए का नोट उसकी जेब से निकाल लिया. वह हक्का–बक्का रह गया. पर कुछ समझे इसके पहले तो इक़बाल मुंडागली की भूल भुलैया में ग़ायब हो चुका था. एस.एस.सी. का परीक्षाफल घोषित होने पर मुझे केवल इतना आनंद हुआ कि चलो सिर से मुसीबत टली.

नोट और रसीद जेब में डालकर वह लड़का आगे बढ़ा. थोड़ी दूर जाने पर इक़बाल ने उसे घेरा और दो झापड़ मारकर पांच रुपए का नोट उसकी जेब से निकाल लिया. वह हक्का–बक्का रह गया. पर कुछ समझे इसके पहले तो इक़बाल मुंडागली की भूल भुलैया में ग़ायब हो चुका था.

एस.एस.सी. का परीक्षाफल घोषित होने पर मुझे केवल इतना आनंद हुआ कि चलो सिर से मुसीबत टली. क्योंकि लगभग हर विषय में मुझे 35 प्रतिशत या उससे थोड़े अधिक अंक मिले थे. पर ड्राइंग में मैंने छक्का मारा था. जब कि इक़बाल ने हर विषय में चौके और छक्के मारे थे.

वह अव्वल आया था. गणित में 91 अंक मिले थे तो विज्ञान में 69. फिजिक्स–केमिस्ट्री के विषय में 71 अंक थे. ये परीक्षाएं उसने किन परिस्थितियों में दी थीं, यह हम जानते हैं. उसकी आर्थिक समस्याएं अभी तक हल नहीं हुई थीं. दिन–प्रतिदिन उस पर दबाव बढ़ता जा रहा था और अभी तो उसे कॉलेज में भर्ती होना था. उपाय क्या था?

खोमचा लेकर खट्टी–मीठी गोलियां बेची जाएं?

पानी के हंडे उठाए जाएं?

नहीं, इससे कमर टूट जाएगी और किसी तरह घर–ख़र्च निकलेगा, कॉलेज का ख़र्च नहीं. इस बार उसने नया नुस्ख़ा आज़माया. स्वतंत्र रूप से उसने शराब की भट्ठी चलाने का तय किया.

आबिद भाई, –सूफ़ी ने मुझे नोट्स लिखने से रोका– शराब की भट्ठी नहीं, टिंक्चर आयोडीन से अल्कोहल बनाने का उद्योग.

यानी कि शराब बनाने का धंधा, ठीक?

उसने हां कहा.

यह आपने कहां सीखा?

मोगल यही करता था.

टिंक्चर आयोडीन अर्थात ऐथिल अल्कोहल और आयोडीन. उसका असली रंग भूरा होता है. यह टिंक्चर आयोडीन इक़बाल एक पीपे में भरता. पीपे के ऊपर के हिस्से में, मगर ढक्कन से चार इंच नीचे लोहे की नली के सहारे एक थाली तैरती रहती. यह नली थाली के किनारे को भेदती हुई पीपे से तीन इंच के क़रीब बाहर आती. इस दूसरे सिरे के साथ रबर की एक ट्यूब जुड़ी रहती. पीपे को ढांपने से पहले पचास पाउंड टिंक्चर आयोडीन में एक पाउंड हाईपो मिलाकर उसके नीचे स्टोव जला दिया जाता.

यह हाईपो वही तो नहीं, जिसका उपयोग फोटोग्राफर डार्क–रूम में करते हैं? मैंने थोड़ी स्पष्टता चाही.

हां, कहते हुए उसने अधिक जानकारी दी, हाईपो मिलाने से दो लाभ होते हैं. भूरे रंग के टिंक्चर आयोडीन को रंगहीन करने और वाष्पीकरण की क्रिया को अधिक गतिशील बनाने में.

टिंक्चर आयोडीन के उबलने पर उसकी भाप बनती, भाप ऊपर चढ़ती, परंतु पीपा ऊपर से ढंका होने के कारण भाप छत से टकराकर पानी के रूप में थाली में इकट्ठा होती. थाली में से लोहे की नली द्वारा पीपे में से बाहर आकर, रबर की ट्यूब से गुज़रते हुए नीचे रखे बर्तन में शुद्ध अल्कोहल बनकर टपकती. फिर उसे बोतलों में भरकर शराब के अड्डों पर बेचा जाता.

इक़बाल कुल मिलाकर एक दिन में सौ बोतलें तैयार करता. एक बोतल घर में साढ़े चार से पांच रुपये में पड़ती और उसका विक्रय मूल्य था सात रुपये. बिक्री अधिक नहीं थी. फिर भी वह रोज की पैंतीस से अस्सी बोतलें बेचकर लगभग अस्सी रुपये कमा लेता था. उसकी यह कमाई मोगल को अखर गई. असल में यह धंधा उसी का था. उसी के ग्राहकों को इक़बाल माल सप्लाई करता था. अपने ग्राहकों के टूटने पर वह भड़क उठे, यह भी स्वाभाविक था. उसने इक़बाल को दो चेतावनियां दीं. तीसरी देने में वह यक़ीन नहीं करता था. इक़बाल ने उसे महत्व नहीं दिया, जैसे मोगल के अस्तित्व से अनजान हो. इस तरह वह अपने धंधे का विस्तार करता रहा. मोगल और इक़बाल की तुलना करें तो एक को हाथी कहा जा सकता है और दूसरे को मच्छर. चुटकी में इक़बाल को मसल डालने जितनी ताक़त मोगल में थी. पर द्वंद्व के लिए सिर्फ़ ताक़त नहीं, आत्मविश्वास भी ज़रूरी होता है (इक़बाल में यह भरपूर था). आत्मविश्वास हो तो बाल कृष्ण काली नाग जैसे विषधर को पछाड़ सकता है.

रात नौ बजे के बाद शंकर मराठा के मजगांव के अड्डे पर माल पहुंचाकर इक़बाल अकेला वापस लौट रहा था. नूरबाग़ की बाड़ी तक आते–आते वह हांफने लगा. वह थोड़ी देर के लिए रुक गया. उसे लगा, शायद वह थक गया होगा. पर थकान से वह परिचित नहीं था. पैदल उसने सारा शहर छान मारा था. सांस की गति कभी तेज़ नहीं हुई थी.

बिजली के खंभे के नीचे वह सोचता हुआ खड़ा था. बाड़ी में किसी की शादी थी. बैंड–बाजे की आवाज़ें वह स्पष्ट सुन सकता था. चारों ओर लगभग अंधेरा था. बीच में बाड़ी प्रकाश से जगमगा रही थी. बाहर कारों की भीड़ थी.

थोड़ी देर के बाद सांस संयत होने पर वह आगे बढ़ने लगा और एक दुकान की बगल में से परछाईं की तरह सरककर मोगल उसके सामने आ गया. इक़बाल को लगा अचानक उसके सामने दीवार आ गई. उसका आगे बढ़ा क़दम पीछे खींच गया था.

दोनों एक–दूसरे से अंतर रखकर आमने–सामने खड़े थे. किसी को कुछ कहने की ज़रूरत नहीं थी. प्रश्न दोनों के लिए अस्तित्व का था. समय बलवान के साथ था. जिसकी बाजुओं में ज़ोर हो, वह यहां टिक सकता था. वर्ना बड़ी मछली छोटी मछली को निगल जाती थी.

(अगले अंक में जारी)

नेट से डाउनलोडिंग, ज़रा संभल के....

आपको ब्रिटनी स्पीयर्स के नए गाने सुनने हैं या अपने भाई को जन्मदिन के तोहफे के तौर पर उसकी पसंद के गानों की सीडी देनी है, आपने इंटरनेट पर जाकर गाने डाउनलोड कर लिए और फिर वहां से अपनी सीडी में, लेकिन जैसे-जैसे आप वह सीडी बर्न कर रहे हैं, वैसे-वैसे आप एक अपराधी भी बनते जा रहे हैं. ऐसा अपराध, जिसमें बड़ी सज़ा या जुर्माना हो सकता है.

इंटरनेट से डाउनलोड करने वाले ज़रा सावधान हो जाएं. नहीं तो, जुर्माने के तौर पर बड़ी राशि देनी पड़ सकती है. डाउनलोड करते वक़्त आप को इसकी जानकारी नहीं होती है कि यह काम वैधानिक है या अवैधानिक? कुछ इसी तरह के एक मामले में अमेरिका की एक महिला को म्यूज़िक कॉपीराइट के उल्लंघन का दोषी पाया गया. वहां की कोर्ट ने उसे जुर्माने के तौर पर 1.9 मिलियन डॉलर कंपनी को देने का आदेश दिया है. उस महिला ने क़ानून की नज़र में अवैधानिक तरीक़े से 24 गाने इंटरनेट से डाउनलोड किए थे. अब ज़रा सोचिए, अगर उस महिला की जगह आप होते तो? ऐसा होना कोई बड़ी बात नहीं. हममें से अधिकतर लोग इसी तरह नेट से गाने और दूसरी चीज़ें डाउनलोड करते रहते हैं. क्या कोई कंपनी हम पर भी ऐसा मुक़दमा ठोक सकती है. क्या हमें भी इतना बड़ा जुर्माना देना पड़ सकता है? जवाब है, हां. हम में से अधिकतर लोग गाने डाउनलोड करते समय इस बात पर ध्यान नहीं देते कि क्या हमें इसको डाउनलोड करने का अधिकार है. दरअसल इंटरनेट पर मिलने वाली सामग्री दो तरह की होती है. पहली फ्री कंटेंट होती है, जिसपर किसी का कॉपीराइट नहीं होता. ऐसे में कोई भी उसे डाउनलोड कर सकता है. दूसरे तरह के कंटेंट जिनका कॉपीराइट किसी के पास होता है, उन्हें डाउनलोड करना कॉपीराइट का उल्लंघन है, जिसके लिए सज़ा या जुर्माना हो सकता है. हालांकि इस को लेकर हर देश में अलग-अलग क़ानूनी तरीक़े हैं. वैसे, इस मामले में चार चीज़ें बिल्कुल साफ हैं. किसी गाने का कॉपीराइट आपके पास हो, इसके चार तरीक़े हैं.

1) ख़ुद का गाना बनाइए
2) म्यूज़िक या गाना बनाने वाले से अनुमति लीजिए
3) किसी गाने के कॉपीराइट के ख़त्म होने का इंतज़ार कीजिए.
4) उसके कॉपीराइट ख़रीद लें.

इनमें से आख़िरी तरीक़ा सबसे आसान है. अगर आप एक बार किसी गाने के राइट ख़रीद लेते हैं तो आप उसे कहीं से, कभी भी और कितनी बार भी डाउनलोड कर सकते हैं. हालांकि इसके लिए आपको एक मोटी रक़म चुकानी पड़ सकती है.

मुश्किल यह है कि गानों की अधिकतर साइट्स भी इस बारे में ज़्यादा जानकारी नहीं देतीं. कई पर तो गुमराह करने वाली जानकारियां हैं. अगर किसी साइट पर यह लिखा हो कि *एमपी3 इज़ लीगल* तो लोग अक़्सर मान लेते हैं कि उसे डाउनलोड करने में कोई दिक़्क़त नहीं, लेकिन यह सब भरमाने वाला है. दरअसल एमपी3 एक फार्मेट भर है जो लीगल ही है, लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि उसे डाउनलोड किया जा सकता है. इसके अलावा कई बार फ्री-शेयरिंग के नाम पर भी लोग बेवकूफ बन जाते हैं. फाइल शेयरिंग जायज़ हो सकती है लेकिन अगर उस पर कॉपीराइट न हो तभी तक. कॉपीराइट हो तो उसे शेयर नहीं किया जा सकता. सबसे अधिक दिक़्क़त तो उन एमपी3 से होती है जो किसी ओरिजिनल सीडी को कॉपी करके बनाई जाती है. ऐसे गाने को शेयर करना तो अपराध है ही, साथ ही अगर आपने किसी गाने का राइट ख़रीदा हो तो उसे भी आप किसी अन्य के साथ शेयर नहीं कर सकते.

किसानों को मिलेगी तकनीक की मदद

किसानों के लिए एक ख़ुशख़बरी. वे अब किसी भी समय, किसी दूर-दराज़ के क्षेत्र से मोबाइल फोन के ज़रिए ही फसल और मिट्टी के बारे में कृषि विशेषज्ञों से अपने सवाल पूछ सकते हैं. अपनी जिज्ञासा को शांत कर सकते हैं और अपने सवालों के जवाब पा सकते हैं. यह सुविधा टाटा कंसल्टेंसी सर्विसेज़ (टीसीएस) ने शुरू की है. *एम-कृषि* नाम से शुरू हुई इस सुविधा के तहत अब मोबाइल पर ही एग्रो-एडवाइज़री व्यवस्था की नई पहल की गई है. इस सुविधा में सेलफोन के माध्यम से किसान कृषि विशेषज्ञों से अपनी क्षेत्रीय भाषा में ही सटीक और प्रसांगिक सूचनाएं प्राप्त कर सकते हैं. इस मोबाइल एग्रो-एडवाइज़री सिस्टम को टीसीएस इनोवेशन लैब, मुंबई द्वारा विकसित किया गया है. इसने मानवीय बोली और भाषा को पहचानने के लिए सेंसर का निर्माण किया है. कंपनी ने आंतरिक तौर पर विकसित आईवीरार (इंटरैक्टिव वाइस रिस्पांस) टाइप के प्लेटफॉर्म का भी उपयोग किया है. एम-कृषि के द्वारा किसान दूर बैठे विशेषज्ञों से सीडीएमए हैंडसेट के ज़रिए कोई भी जानकारी प्राप्त कर सकता है. इसके साथ ही वे अपनी फसल की फोटो भी कैमरे वाले मोबाइल से भेज सकते हैं. फसल, मिट्टी और सूक्ष्म वातावरण संबंधी सूचना को इकट्ठा कर सेंसर इसे सेल्युलर नेटवर्क का उपयोग कर, ऑटोमैटिक वेदर स्टेशन को भेज देता है. किसान भी इसी माध्यम से जानकारी प्राप्त कर सकते हैं. एम-कृषि का विकास कई तकनीकों को जोड़कर किया गया है. जैसे सेंसर, सोलर पॉवर, सीडीएमए मॉडम, सीडीएमए नेटवर्क, जीपीएस, कैमरा वाले हैंडसेट, बिना तार के लिए बाइनरी रूटीन, क्लांइट सॉफ्टवेयर, एक्सपर्ट कॉनसॉल सॉफ्टवेयर और एक इंजन, जिनसे ये सारी चीज़ें किसी भारतीय भाषा में स्क्रीन पर दिख सकें. वर्तमान में कंपनी ने टाटा टेलीसर्विसेज के साथ उसके सीडीएमए सर्विस का उपयोग करने के लिए अनुबंध किया है. इस प्रोजेक्ट को टाटा टेलीसर्विसेज, एम एस स्वामीनाथन फाउंडेशन, टाटा केमिकल एंड रैलीज, नेशनल सेंटर ऑफ ग्रेप्स, कॉटन रिसर्च सेंटर आदि के साथ मिल कर लागू किया जाएगा.

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback.chauthiduniya@gmail.com

मोबाइल में मैदान मारने की तैयारी

एसर कंप्यूटर का दुनिया में तो बड़ा नाम है ही, अब वह मोबाइल बाज़ार में ज़ोर-शोर से उतरा है. इसमें भी उससे कम सफलता की उम्मीद तो नहीं ही की जा सकती. ख़ैर एसर ने एक दो नहीं, कई नए मोबाइल बाज़ार में उतारे हैं. साफ है कि कंपनी स्थापित मोबाइल कंपनियों को कड़ी टक्कर देने के लिए तैयार है. इसके हर एक मॉडल की अलग ख़ासियत है, जिससे उपभोक्ताओं को अपनी ज़रूरत के हिसाब से मोबाइल चुनने की आज़ादी है.

डीएएक्स 900 मॉडल इन उम्मीदों पर खरा भी उतरता है. एसर का डीएएक्स 900 मॉडल डुअल सिम की सुविधा दिलाता है, यानी एक ही सेट पर पर्सनल और बिज़नेस दोनों ज़रूरतों के लिए नंबर रखे जा सकते हैं. एसर का डीएएक्स 650 मॉडल का यूज़र इंटरफेस अपने डूअल फेस डिज़ाइन की बदौलत अलग किस्म की सुविधाएं उपलब्ध कराता है. इसमें एक तरफ़ टच तो दूसरी तरफ़ फिंगर-फ्रेंडली की-पैड लगाया गया है. इसी तरह एसर के एफ 900 और एम 900 मॉडल कहीं भी वेब ब्राउज़िंग का शानदार अनुभव दिलाने के लिए तैयार किए गए हैं. एफ 900 में एक नया प्रयोग किया गया है. इसमें एक टच की-बोर्ड लगाया गया है, जिससे ब्राउज़िंग और आसान हो जाती है. वहीं एम 900 में नोटबुक से तालमेल कर सभी कांटैक्ट्स और फाइलों को एक्सेस करने की सुविधा होती है. इससे ई-मेल और फाइलिंग करने में आसानी हो जाती है. एसर के ये नौ मॉडल इस साल एक-एक कर बाज़ार में आएंगे. यानी अब चुनने के लिए आपके पास बहुत सारे विकल्प होंगे.

घरेलू नुस्ख़ों में भी हैं दम

आजकल लोग घर के नुस्ख़ों के बजाए बाज़ार के प्रोडक्ट की तरफ़ अधिक ध्यान देते हैं. बाज़ार वाले प्रोडक्ट्स में केमिकल्स मिले होते हैं जो हमारी त्वचा को नुक़सान पहुंचाते हैं. तात्पर्य यह कि हमें-आपको अक़्सर पता ही नहीं रहता है कि घर की रसोई में ही सौंदर्य का ख़ज़ाना छिपा रखा है, जिससे आप अपनी ख़ूबसूरती व रंगत में निखार ला सकती हैं.

पुराने जमाने में महिलाएं प्राकृतिक व घरेलू सौंदर्य प्रसाधनों का ही प्रयोग करती थीं. इससे न केवल उनकी ख़ूबसूरती की उम्र बढ़ती थी, बल्कि उनकी त्वचा लंबे समय तक बेदाग़ व कांतिमय भी बनी रहती थी. ऐसे ही कुछ घरेलू सौंदर्य नुस्ख़े -

1 बादाम, गुलाब के फूल, चिरौंजी और पिसे जायफल को रात में दूध में भिगो दें. सुबह इसे पीसकर इसका उबटन लगाएं. इससे चेहरे के दाग़-धब्बे-मिटते हैं.
2 दो चम्मच सोयबीन का आटा, एक बड़ा चम्मच दही व शहद मिलाकर पेस्ट बनाएं. मिश्रण को कुछ देर चेहरे पर लगाकर चेहरा धो लें. इससे चेहरे में कसावट आ जाती है.
3 नीम की पत्तियां, गुलाब की पत्तियां, गेंदे का फूल सभी को एक बर्तन में उबालें और इस रस को चेहरे पर लगाएं. इससे मुंहासे निकलना बंद हो जाते हैं.
4 चंदन, गुलाब जल, पुदीने का रस और अंगूर का रस मिलाकर पेस्ट बनाएं और उसे चेहरे पर लगाएं. कुछ देर बाद ठंडे पानी से चेहरा धोएं. ऐसा करने से चेहरे की झुर्रियां मिटती हैं.
5 धूप में अधिकतर हमारी त्वचा झुलस जाती है और काली पड़ जाती है. इससे से बचने के लिए आम के पत्ते, जामुन, दारू हल्दी, गुड़ और हल्दी की बराबर मात्रा मिलाकर पेस्ट बनाकर शरीर पर लगाएं तथा फिर कुछ समय बाद स्नान कर लें. फिर देखिए त्वचा कितनी चमकदार हो जाती है.

मैदान पर लगेंगे एचपी के शॉट्स

लगता है कि यह सत्र बड़े खिलाड़ियों का है. जहां एक ओर एसर ने अपने मोबाइल्स की लंबी रेंज बाज़ार में उतारी है, वहीं भारत के सबसे बड़े कंप्यूटर ब्रांड एचपी अपने नए नोटबुकों की रेंज बाज़ार में लेकर आई है. एचपी के मुताबिक इस रेंज में हर वर्ग और ज़रूरत के लिए नोटबुक रखे गए हैं. साथ ही क्रिकेट की दीवानगी का फ़ायदा उठाने के लिए कंपनी ने अपने प्रोडक्ट्स को क्रिकेट शॉट्स के नाम से जोड़कर बाज़ार में उतारा है.

एचपी का कवर ड्राइव यानी एचपी मिनी 110 - छोटे से बैग में आ सकने वाला मिनी नोटबुक हर तरह की सुविधाओं से लैस है. साथ ही एचपी ने इसके रंग-रूप पर भी ख़ासा ध्यान दिया है. एचपी का अगला शॉट हुक है यानी हम बात करेंगे एचपी पैवेलियन डीवी2 की, इसे ख़ास तौर पर मनोरंजन की ज़रूरतों के हिसाब से बनाया गया है. बेहतरीन एलईडी स्क्रीन के साथ ही ख़ूबसूरत फिनिशिंग वाला है यह नोटबुक. अब बात स्ट्रेट ड्राइव की, एचपी ने अपने पैवेलियन डीवी6 को उतना ही ख़ूबसूरत बनाने की कोशिश की है जितना सचिन के बल्ले से निकला कोई स्ट्रेट ड्राइव होता है. टेक्नो-सैवी लोगों के साथ यह मनोरंजन के शौक़ीनों लिए भी अच्छी पसंद होगा और इसके एक्सप्रेसो ब्लैक रंग के तो क्या कहने. एचपी के पवेलियन सीरीज के ही डीवी3 में भी मनोरंजन और मीडिया को लेकर अंदर बने वेबकैम तक की तमाम सुविधाएं हैं. इसमें इंटरटेनमेंट की सारी सुविधाएं तो हैं ही, ज़रूरी काम-काज के लिए भी सभी उपकरण मौजूद हैं. एचपी का यह पुल शॉट हर मायने में छह रन बटोरता है. स्वीप, क्रिकेट का सबसे प्रभावशाली शॉट बन गया है और शायद इसलिए एचपी ने अपने प्रोबुक की तुलना इसी से की है. क़ीमत के मामले में जेब पर भारी न पड़ने के बावजूद फीचर्स के मामले में इसमें कमी नहीं है. व्यापारी और कामकाजी लोगों के लिए यह एक बेहतरीन विकल्प है. आख़िर में बात एचपी के कट की - काम्पैक 610 नोटबुक पीसी क़ीमत में कम भी है और सुविधाओं में ज़्यादा भी. एचपी को उम्मीद है इसकी कम क़ीमत इसे अधिकतर मध्यमवर्गीय लैपटॉप ग्राहकों को आकर्षित करने में मदद करेगी. यानी नोटबुक और लैपटॉप कंप्यूटरों के मैदान में एचपी ने अपने सारे शॉट्स खेल दिए हैं. अब देखना है कि इन शॉट्स पर कंपनी कितने रन बटोर पाती है.

फोटो-*प्रभात पाण्डेय*

दुनिया

सायना की सनसनी

क्रिकेट में भले ही धोनी की सेना और महिला क्रिकेट टीम ने ट्वेंटी-20 विश्व कप में निराश किया हो, लेकिन दूसरे खेलों से अच्छी ख़बरें भी हैं. वक़्त निराश होने का नहीं, बल्कि ख़ुश होने का भी है. जिन खेलों में हम कभी पीछे थे, वहां अपने खिलाड़ी अब कमाल दिखा रहे हैं. बॉक्सिंग के रिंग से अभी मेडलों की खेप लेकर मुक्केबाज़ लौटे ही थे कि बैडमिंटन में सायना नेहवाल ने गर्व करने का मौका दे दिया. 19 वर्षीया बैडमिंटन स्टार सायना नेहवाल ने वह कर दिखाया, जिससे पूरा देश गौरवान्वित महसूस कर रहा है. उन्होंने इंडोनेशिया ओपन में जीत की इबारत लिखकर एक और बड़ा मुक़ाम हासिल किया. सायना ने इस जीत के साथ ही एक नया इतिहास रच दिया. वह बैडमिंटन में सुपर सीरीज जीतने वाली पहली भारतीय बन गईं. उन्होंने जकार्ता में इंडोनेशिया ओपन के फाइनल में चीन की ली वांग को हराया. यह किसी भी भारतीय महिला बैडमिंटन खिलाड़ी का अब तक का सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन है. सायना का सितारा इस समय बुलंदी पर है. वह बीजिंग ओलंपिक में क्वार्टर फाइनल तक पहुंचने वाली पहली भारतीय थीं. 2008 में वर्ल्ड जूनियर बैडमिंटन चैंपियनशिप जीतकर देश का नाम रोशन किया था. अब उनके इस प्रदर्शन को ऑल इंग्लैड चैंपियन रहे प्रकाश पादुकोण और पुलेला गोपीचंद (सायना के मौजूदा कोच) की उपलब्धि के बराबर आंका जा रहा है. वैसे इस जीत से दुनिया की आठवें नंबर की खिलाड़ी सायना ने अपने से पांच पायदान ऊपर वरीयता वाली ली वांग से पिछले सप्ताह सिंगापुर ओपन सुपर सीरीज़ में मिली हार का बदला भी ले लिया. ज़ाहिर है, उनकी यह जीत भारतीय बैडमिंटन के लिए मील का पत्थर है. उनकी इस जीत के बाद पुरस्कारों और तारीफ़ का दौर चल पड़ा है. हालांकि, बैडमिंटन प्रेमी अभी यह भूले नहीं होंगे कि इन्हीं सायना को अभी अपने पासपोर्ट के नवीनीकरण के लिए कितनी मशक्क़त झेलनी पड़ी थी. फ़िलहाल तो देश में क्रिकेट ज़रा बैकफुट पर है, सो मीडिया से लेकर राजनेताओं तक को सायना की जीत दिखाई दे रही है, लेकिन क्या कुछ दिनों बाद भी सायना उन्हें याद रह पाएगी ? इन सवालों के जवाब तो वक़्त के साथ मिलेंगे. अभी तो बस यही कहना है कि हमें गर्व है तुम पर सायना.

पहले भारत, अब पाकिस्तान और अगला श्रीलंका !

■ आतंकवाद से लड़ते देशों ने ही दिखाया है चैंपियन बनने का दमखम

पावस नीर

आईसीसी ट्वेंटी-20 विश्व कप में पाकिस्तान की जीत से पाकिस्तानी खिलाड़ियों और समर्थकों को तो जश्न मनाने का मौका मिल ही गया है, क्रिकेट के रोमांच को भी नई ऊंचाई मिली है. पाकिस्तान की जीत से फिर यही साबित होता है कि क्रिकेट में किसी भी टीम से बड़ा खेल होता है. ग़ौरतलब है कि यह वही पाकिस्तानी टीम है, जो पहला मैच हारकर बाहर होने की कगार पर खड़ी थी. यह वही पाकिस्तानी टीम थी, जिसके खेल को देखकर उसके पूर्व खिलाड़ियों तक ने अगंभीर करार दे दिया था. यह वही पाकिस्तानी टीम थी, जिसने हाल के दिनों में न के बराबर क्रिकेट खेली थी. इस टीम की जीत ने साबित कर दिया है कि काग़ज़ पर लिखे आंकड़ों और मैदानी हार-जीत में बहुत बड़ा फ़र्क़ होता है. पाकिस्तानी जीत से उसकी दम तोड़ती क्रिकेट को नई जान मिल गई है. भारत के लिए भी यह अच्छी बात है कि अब उसके पड़ोस में क्रिकेट फिर से

ताक़तवर हो रहा है. वैसे पाकिस्तानी टीम ट्वेंटी-20 के खेल में उन्नीस कभी नहीं रही है. उसने पिछली बार भी फाइनल का सफ़र तय किया था और थोड़ी चूक से विजेता बनने से रह गई थी. इस बार उसने कोई कसर नहीं छोड़ी.

इस जीत से यह भी साबित हो गया कि क्रिकेट का नया घर दक्षिण एशिया ही है. भले ही आतंक और असुरक्षा के नाम पर इन देशों को हाशिए पर धकेलने की कोशिश होती रही है. भारत तक को इस बार आईपीएल बाहर ले जाना पड़ा. बहरहाल हमलों, बहिष्कारों और विवादों से घिरी पाकिस्तानी क्रिकेट में यह जीत किसी सुखद आश्चर्य से कम नहीं है. फाइनल में पहुंचने वाली दूसरी टीम श्रीलंका थी. यह वही टीम थी जो कुछ दिनों पहले पाकिस्तानी दौरे पर लाहौर में आतंकी हमले का शिकार हुई थी. ख़ुद अपने देश में उसे एक भीषण गृहयुद्ध का गवाह बनना पड़ा है. लाहौर में श्रीलंकाई क्रिकेटरों पर हमले के बाद वहां तमाम अंतरराष्ट्रीय मैचों पर प्रतिबंध लगा दिया गया था. अब विडंबना देखिए कि टी-20 विश्वकप का खिताब आज उसी पाकिस्तान की शान बढ़ा रहा है. फाइनल में पाक-श्रीलंका के खेलने से यह तो साबित हो ही गया कि क्रिकेट का खेल किसी आतंक से रुकने वाला नहीं है. द शो मस्ट एंड विल गो ऑन. इस विश्व कप ने आतंक और हिंसा का हमला झेल रहे इन देश के लोगों को कुछ ख़ुशी के पल दिए हैं. टी-20 विश्व कप की इस बार भी शुरुआत पिछली बार की तरह धमाकेदार रही. पिछली बार जहां वेस्ट इंडीज जैसी टीम पहले ही राउंड में बाहर हो गई थी, वहीं अबकी कंगारू शर्मसार थे. मेजबान इंग्लैंड का तो यह दुर्भाग्य ही बन गया है कि वह लाख अच्छा खेल दिखा ले, अपने घर में सफलता उससे रूठी ही रहेगी. क्वालीफाई कर के विश्व कप खेलने वाली टीमों में आयरलैंड और नीदरलैंड ने अपने-अपने प्रदर्शनों से सबको मंत्रमुग्ध कर दिया. नीदरलैंड ने जहां अपने पहले ही मैच में इंग्लैंड जैसी धाकड़ टीम को धूल चटा दिया, वहीं आयरलैंड ने बांग्लादेश को बाहर कर सुपर-आठ में पहुंच दिखाया. सुपर-आठ में दम तोड़ देने वाला अकेला भारत ही नहीं रहा. वेस्ट इंडीज, इंग्लैंड के अलावा दक्षिण अफ्रीका भी रहा, जिसे इस बार ख़िताब का सबसे महत्वपूर्ण दावेदार माना जा रहा था. लगता है कि बड़े मुक़ाबलों में चूक जाने के रोग का इलाज उसे अब तक नहीं मिला है.

pawas.chauthiduniya@gmail.com

याद आएंगे यूनिस ख़ान?

जीत के साथ ही पाकिस्तानी टी-20 टीम के कप्तान यूनिस ख़ान ने टी-20 से संन्यास लेने की घोषणा कर दी. कहा भी जाता है कि खेल में संन्यास तभी लेना चाहिए, जब शिखर पर हों. यूनिस ने भी यही किया है. जाते-जाते यूनिस ख़ान कह गए कि उन्हें भी शायद इमरान ख़ान की तरह याद रखा जाएगा. इमरान ने अपनी कप्तानी में पाकिस्तान को 1992 का एकदिवसीय विश्व कप जिताया था. अब यूनिस भी उसी तरह याद रखे जाना चाहते हैं. यह वही यूनिस हैं, जिन्होंने पहले मैच में हार के बाद टी-20 के खेल को महज़ एक मनोरंजन करार दे दिया था. पूरी सीरीज़ में उनकी कप्तानी में कोई करिश्मा नहीं दिखा, पर टीम व्यक्तिगत प्रदर्शनों पर जीतती रही. फिर भी उनका नाम पाकिस्तान के सफल कप्तानों की सूची में शुमार हो गया है.

बूम-बूम अफरीदी

जब टी-20 के खेल का ईज़ाद हुआ था, तब शायद सबसे ज़्यादा ख़ुशी उन बल्लेबाज़ों को हुई थी जो बड़े शॉट्स लगाने में माहिर थे. ऐसे ही एक बल्लेबाज़ थे -शाहिद अफरीदी. शाहिद का खेलने का तरीक़ा बीस-बीस ओवरों के खेल के लिए सबसे उपयुक्त था. हालांकि शाहिद कभी इस खेल में उतने नहीं चमके, जितनी उम्मीद उनसे लगाई जा रही थी. उनकी गेंदबाज़ी सुधरती रही लेकिन बल्लेबाज़ी का स्तर गिरता रहा. अब लगता है शाहिद अपना धमाका बड़े मौके लिए बचाए हुए थे. इस विश्व कप के आख़िरी दो मैचों में शानदार खेल दिखाकर शाहिद ने दिखा दिया कि अभी भी उनमें कितनी आग बाक़ी है. इससे यह भी तय हो गया कि उनका करियर भी अभी बहुत बाक़ी है.

मेजबानी में पहला ख़िताब

आईसीसी के टी-20 महिला विश्व कप पर क़ब्ज़ा जमाकर इंग्लैंड ने साबित कर दिया कि महिला क्रिकेट में अभी वह अपराजेय टीम बनी हुई है. हालांकि उसे भारतीय और ऑस्ट्रेलियाई टीमों से कड़ी टक्कर मिलने लगी है, लेकिन अभी भी वह उनसे बहुत आगे है. इंग्लैंड की टीम ने इस पूरे विश्व कप में एक भी मैच नहीं गंवाया. दूसरे, किसी भी तरह के क्रिकेट में यह पहला मौका था, जब मेजबानी करते हुए इंग्लैंड ने विश्व कप जीता है. उधर भारतीय महिला टीम भी अच्छा खेली लेकिन सेमीफाइनल में उसे इंग्लैंड ने ही बाहर का रास्ता दिखा दिया. सबसे बड़ी बात यह रही कि पहली बार महिलाओं ने पुरुषों के विश्व कप के साथ क़दमताल मिलाई. उम्मीद है कि यह परंपरा आगे भी जारी रहेगी.

कब ख़त्म होगी केकेआर की किचकिच

ऊंचे मुक़ाम पर पहुंच कर शाहरुख़ ख़ान जैसी ग़लतियां बहुत कम लोग करते हैं. यही कारण है कि किंग ख़ान बेचारगी के साथ आए दिन माफी मांगते नज़र आते रहते हैं. आईपीएल में जब टीमें ख़रीदी-बेची जा रही थीं, तब सबने उन्हें कोलकाता यानी कोलकाता नाइट राइडर्स (केकेआर) से बचने को कहा था. लेकिन आम राय के ख़िलाफ़ रुख़ लेने वाले शाहरुख़ ने यहां भी अपने मन की ही की. यह आईपीएल के जन्म से पहले की बात है. तब सौरभ गांगुली को भारतीय टीम से निकाल दिया गया था. ग्रैग चैपल के साथ अपने विवाद के कारण दादा चर्चा में थे. हमेशा ख़ुद चर्चा के केंद्र में रहने वाले किंग ख़ान को यह टीम काफी हॉट लगी. लिहाजा, जूही चावला के लाख मना करने के बावजूद केकेआर ख़रीद ली. जूही की यह बात नहीं मानी कि टीम में सौरभ के अलावा कोई स्टार नहीं है. ख़ैर, आईपीएल का पहला सीज़न जैसे-तैसे निपट गया. तमाम अनुमानों को सही साबित करते हुए केकेआर फिसड्डी रही. बड़बोले शाहरुख़ ने अगले साल यानी 2009 में सब ठीक हो जाने का वादा किया था. लेकिन आईपीएल के दूसरे सीज़न में भी उनकी टीम सबसे आख़िरी पायदान पर ही नज़र आई. ऐसा तब हुआ, जब कोच जॉन बुकानन के कहने पर उन्होंने सौरभ की जगह ब्रैंडन मैकुलम को कप्तानी सौंप दी. बुकानन के कहने पर चार कप्तानों वाली थ्योरी की जमकर वकालत भी की. लेकिन कहीं कुछ नहीं बदला. हां, अब उन्होंने कोच बुकानन को ज़रूर बदल दिया है. लेकिन तब पछतावे होत क्या जब चिड़िया चुग गई खेत. कोच के पद से बुकानन की छुट्टी होगी, इसकी भविष्यवाणी हमने पहले ही कर दी थी. हमने यह भी बताया था कि उनकी जगह आस्ट्रेलियाई पूर्व क्रिकेटर स्टीव वॉ को बनाया जाएगा. पहले केकेआर ने उनसे बात भी की थी और उनके राजी होने की बात बताई गई थी. लेकिन अब स्टीव ने कोच बनने से इंकार कर दिया है. दरअसल, इस समय स्टीव वॉ का पूरा ध्यान ग्लोबल फाउंडेशन को स्थापित करने पर लगा हुआ है. बहरहाल, अब अहम सवाल है कि केकेआर का क्या होगा. इस टीम ने आईपीएल के सीज़न-दो में जिस तरह का प्रदर्शन किया है, उससे तो यही लगता है उसे एक ऐसे कोच की ज़रूरत है, जो टीम को जोड़े रख सके. केकेआर को दोबारा अपनी लय पकड़ने के लिए काफी मेहनत करनी होगी, तभी वह कामयाब हो पाएगा. जहां तक नए कोच की बात है, तो केकेआर के सूत्र बताते हैं कि इस बार कोई भारतीय भी यह पद संभाल सकता है. इसमें पूर्व क्रिकेटर लालचंद राजपूत का नाम सबसे आगे चल रहा है. ग़ौरतलब है कि राजपूत ट्वेंटी-20 के पहले विश्व कप में खिताब जीतने वाली टीम इंडिया के कोच थे. वह व्यवहारकुशल और अच्छे नेतृत्वकर्ता माने जाते हैं.

चौथी दुनिया ब्यूरो

feedback.chauthiduniya@gmail.com

लारा हैं चर्चा में

कुछ समय पहले आई फिल्म *पार्टनर* और *झूम बराबर झूम* में लारा दत्ता ने काफी तारीफ़ बटोरी थीं, लेकिन चार साल तक इंडस्ट्री में रहने के बाद भी उनका करियर ठंडा ही रहा. अब इस पूर्व मिस यूनिवर्स का करियर फिर गरमाता हुआ दिखाई दे रहा है. गंभीरता से न ली जाने वाली लारा को बड़े-बड़े निर्माता अपनी फिल्मों में कास्ट करना चाहते हैं. इन दिनों जहां लारा अपने अभिनय को लेकर चर्चा में हैं, वहीं अपनी पर्सनल लाइफ की वजह से भी वह चाहे-अनचाहे चर्चा में रह रही हैं. लारा दत्ता ने केली दोरजी से संबंध तोड़ने के बाद अब डीनो मारिया का दामन थाम लिया है. यही वजह है कि दोनों अक़्सर पार्टियों में साथ दिखाई देते हैं. वैसे, डीनो का तो यही कहना है कि मुझे लारा पसंद हैं, लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि उससे अफेयर है. वह मेरी स्पेशल दोस्त हैं. वैसे, फिल्म इंडस्ट्री में दोस्ती का सही मतलब क्या होता है, वह तो किसी से छिपा है नहीं. अक्सरहां, हीरो-हीरोइन ख़ास दोस्त ही होते हैं, जो बाद में प्रेमी से लेकर जीवन साथी तक बन जाते हैं.

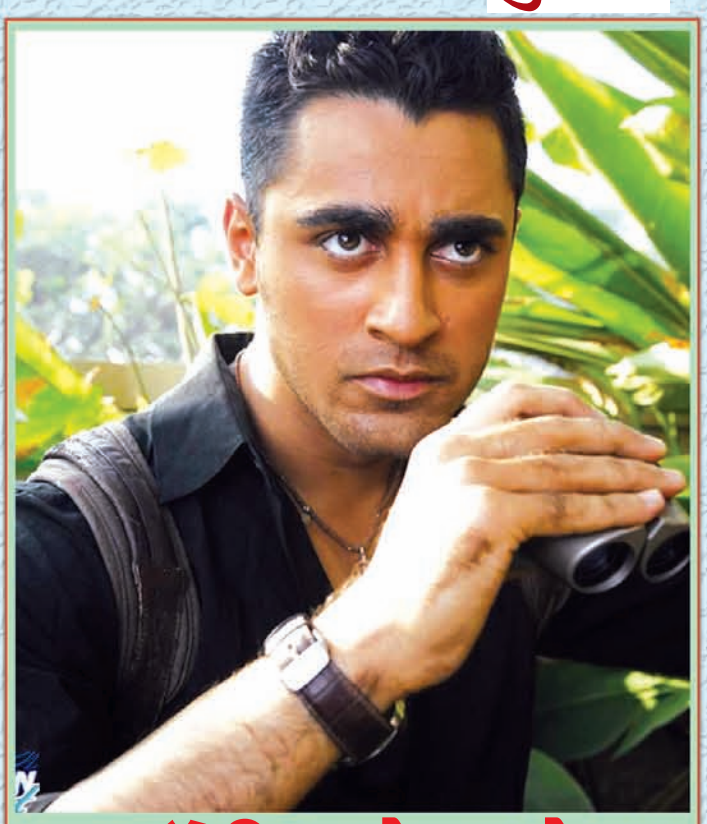

बॉलीवुड के दूसरे मि. परफेक्शनिस्ट

इमरान ख़ान ने अपने मामा आमिर की ही तरह पहली फिल्म से काफी लोकप्रियता हासिल की थी. करियर को जिस गंभीरता से वह आकार दे रहे हैं, उसे देखते हुए कहा जा सकता है कि वह मामा के ही नक़्शेकदम पर चल रहे हैं. इतना कि डायरेक्टर को भी निर्देश देने लगे हैं. इरफान ने अपने मामा से काफी सीख लिया है, तभी तो स्क्रिप्ट में फेरबदल की मांग भी करने लगे हैं. इमरान की नई फिल्म *7 डेज इन पेरिस* में उनकी नायिका कैटरीना कैफ हैं. पता चला है कि इमरान ने स्क्रिप्ट में कुछ फेरबदल कराए हैं, जिससे कैट बेबी के कुछ दृश्यों पर कैंची चल गई है. हालांकि कैट ने इसकी शिकायत खुले तौर पर नहीं की है, तो यह उनका बड़प्पन है. क्योंकि सभी हीरोइनें कैट जैसी नहीं होतीं. वैसे, निर्देशक जिस गंभीरता से उनकी सलाह को ले रहे हैं, उससे लगता है कि बॉलीवुड को दूसरा परफेक्शनिस्ट मिल गया है. सवाल है कि क्या आमिर अपने भांजे के इस तरह समानांतर खड़ा होने को पचा पाएंगे?

अमीषा की उम्मीदें

बॉलीवुड की अभिनेत्री अमीषा पटेल को करियर की पहली ही फिल्म *कहो ना प्यार है* से ख़ूब लोकप्रियता मिली. हां, यह बात अलग है कि यह सफलता हृतिक रोशन की तुलना में कम ही थी. *कहो ना प्यार है* और *गदर-एक प्रेम कहानी* की धमाकेदार सफलता के बाद वह इंडस्ट्री में टॉप पोजीशन के बिल्कुल पास पहुंच गई थीं. इसके बाद ही उनके करियर का ग्राफ तेज़ी से नीचे गिरना शुरू हुआ. अमीषा की चर्चा अपनी फिल्मों के लिए कम और प्रेम-प्रसंगों के लिए या व्यक्तिगत जीवन के लिए अधिक होनी शुरू हो गई. अब अमीषा ने दुबारा अपने करियर पर ध्यान देना शुरू किया है. हाल ही में फिल्म *रन भोला रन* व *चतुर सिंह* से उनको बहुत उम्मीदें हैं. वैसे *रन भोला रन* में वह गोविंदा, तुषार कपूर और सेलीना जेटली के साथ नज़र आएंगी. कहने का मतलब यह कि अब उनको नायकों की भी कमी हो गई है, तभी तो वह गोविंदा जैसे बुढ़ाते और तुषार जैसे बी-ग्रेड नायकों के साथ दिखेंगी. इस पर तुर्रा यह कि उनको इस फिल्म से उम्मीदें भी हैं. वह बताती हैं कि इन दिनों वह अपनी फिल्मों की शूटिंग में बहुत व्यस्त हैं. हम तो ख़ैर यही दुआ कर सकते हैं कि अमीषा देर से ही सही, दुरुस्त आएं.

अमृता आ गईं नज़र

अमृता राव अब फिर से बॉलीवुड में दस्तक दे रही हैं. अरे भई, वही अमृता राव जिन्होंने अपने फिल्मी करियर की शुरुआत राजकंवर की फिल्म *अब के बरस से* की थी, लेकिन चर्चा में केन घोष की *इश्क-विश्क* से आईं थी. *मैं हूं ना* में टॉम ब्वाय संजना और *विवाह* में भोली भाली पूनम के रूप में उनकी परफॉर्मेंस की बहुत सराहना की गई. हालांकि, यह भी आश्चर्य की बात थी कि उसके बाद वह एक तरह से ग़ायब ही हो गईं. हरमन बावेजा के साथ *विक्ट्री* में वह नायिका बनी थीं. लेकिन इससे उन्हें जीत नसीब नहीं हुई और तभी से वह बॉलीवुड के पर्दे से ग़ायब ही हो गई थीं. अब वह अनिल कपूर की प्रोडक्शन हाउस की फिल्म *शॉर्टकट* में अक्षय खन्ना और अरशद वारसी के साथ फिर से नज़र आने वाली हैं. यह कॉमेडी फिल्म है और इसमें अमृता का अहम रोल है, जो दोनों हीरो की ज़िंदगी में उथल-पुथल मचा देता है. *गांधी माई फादर* जैसी सराही गई फिल्म के बाद अनिल कपूर प्रोडक्शन की यह दूसरी फिल्म होगी. मल्टीप्लेक्स और निर्माताओं का झगड़ा ख़त्म होने के बाद अब अमृता की फिल्म भी 10 जुलाई को रिलीज़ हो रही है.

ज़रा हट के हैं इरफान

इरफान अपनी हर फिल्म में अलग ढंग के किरदार निभाने के लिए जाने जाते हैं. वह अपनी भूमिका की लंबाई नहीं देखते. भूमिका चाहे छोटी हो या बड़ी, इरफान अपने हर किरदार में जान डाल देते हैं. कई राष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित इरफान अब तक लगभग साठ फिल्मों में अभिनय कर चुके हैं. फ़िलहाल उनके फैंस के लिए एक अच्छी ख़बर है. जल्द ही दर्शकों को एक ही फिल्म में चार अलग-अलग इरफान दिखेंगे. इस फिल्म का नाम है-पान सिंह तोमर. जिम कॉर्बेट नेशनल पार्क और कई विदेशी जंगलों में इसकी शूटिंग हो रही है. इसमें इरफान एक सैन्य अधिकारी, एक खिलाड़ी, ग्रामीण युवक और एक डकैत के चार किरदार निभा रहे हैं. इरफान ख़ान नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा के छात्र रहे हैं और अभिनय तो उनके ख़ून में है. यही वजह है कि हिंदी सिनेमा के साथ-साथ उन्होंने अंग्रेजी सिनेमा में भी अपनी एक अलग पहचान बनाई है. अपनी पहली ही अंग्रेजी फिल्म *द वारियर* से दुनिया भर में वह चर्चा में आए. उसके बाद हॉलीवुड की फिल्म *द माइटी हार्ट* में वह एंजेलिना जोली के साथ दिखाई दिए. ऑस्कर विजेता फिल्म *स्लमडॉग मिलेनियर* में भी उनके इंस्पेक्टर के किरदार को काफी सराहा गया था. हिंदी सिनेमा में एक फिल्म (नया दिन नई रात) में सबसे अधिक नौ भूमिकाएं करने का कमाल दिखाने वाले संजीव कुमार अब तक इकलौते हैं. इरफान की गिनती बेहतरीन अभिनेताओं में होती है और उनमें भी ऐसा दमखम दिखाने का हौसला है. फ़िलहाल तो दर्शकों को उनकी अगली फिल्म का इंतज़ार है. *पान सिंह तोमर* में उनकी नायिका *देव डी* की माही गिल हैं. इस साल दर्शकों को उनकी कई और फिल्में देखने को मिलेंगी, जिनमें *न्यूयॉर्क* और *हिस्स* आदि महत्वपूर्ण हैं.

मुसीबत को फिल्माने में भी मुसीबत

फिल्मों की शूटिंग करते समय हंसी मज़ाक के साथ-साथ छोटी-मोटी चोटें तो आती ही रहती हैं. लेकिन हाल ही में फिल्म *तुम मिले* की शूटिंग तो सोहा अली और इमरान हाशमी के लिए दुर्घटनाओं का सबब बन कर रह गई. इसमें इन दोनों को काफी चोटों का शिकार होना पड़ा. पहले तो दोनों के सिर पर ही सेट का कुछ हिस्सा गिर गया. इसके तुरंत बाद ही उनके सिर की टक्कर कार से हो गई. एक के बाद एक इन दुर्घटनाओं ने सोहा अली ख़ान और इमरान हाशमी को हिला कर रख दिया है. यह तो उनकी क़िस्मत थी कि उनको कोई गहरी चोट नहीं लगी, लेकिन फिल्म का सेट गिरने से और तेज़ पानी के बहाव से उनको कंधे और सिर पर चोटें तो आईं हीं.

यह फिल्म 2005 में आई मुंबई की बाढ़ पर आधारित है. उस समय का प्रभाव पैदा करने के लिए सेट पर कृत्रिम बाढ़ का दृश्य रचा गया. इसके लिए गैलनों पानी इस्तेमाल किया गया और उसी पानी में सोहा-इमरान को फंसे दिखाना था. इसी दृश्य को फिल्माते हुए दोनों को चोटें आईं. इसी चक्कर में फिल्म की शूटिंग को भी कुछ समय के लिए रोक दिया गया.

फिल्म *तुम मिले* की शूटिंग तो सोहा अली और इमरान हाशमी के लिए दुर्घटनाओं भरा सफर बन कर रह गई. इसमें इन दोनों को अक़्सर चोटों का शिकार होना पड़ा.

फिर उदित होने को तैयार हैं उदिता

पाप फिल्म से बॉलीवुड में पैर रखने वाली उदिता गोस्वामी प्रतिभाशाली होने के बावजूद कुछ ख़ास उपलब्धि हासिल नहीं कर पाई हैं. गिनाने को तो उनकी फिल्लों के नाम दर्जनभर हो जाएंगी, लेकिन सफलता के लिहाज़ से देखें तो परिणाम निराशाजनक ही रहा है. वैसे *अक़्सर* और *ज़हर* जैसी फिल्मों से कुछ लोकप्रियता मिली ज़रूर थी लेकिन उनके करियर को इनसे ज़्यादा फ़ायदा नहीं हुआ. फिल्मी पर्दे पर उदिता के नज़र न आने से अनुमान लगाया जा रहा था कि फिल्मों में कामयाबी न मिलने के कारण वह कहीं किनारे लग गई हैं. लेकिन ऐसा है नहीं. दरअसल असफल फिल्मों से हुई निराशा से उबरने के बाद वह अपने बिखरे फिल्मी सफ़र को संवारने में लगी हुई थीं. लगता है कि उदिता अब बदल चुकी हैं. लोगों से मिलने-जुलने का फ़ायदा भी नज़र आ रहा है. तभी तो इस वर्ष उनकी तीन फिल्में *फॉक्स, द मैन* और *चेंज* जल्द ही प्रदर्शित होने वाली हैं. ये फिल्में उनके करियर के लिए काफी महत्वपूर्ण हैं. उनका कहना है कि वह इन फिल्मों की शूटिंग में व्यस्त थीं इसलिए दूसरी फिल्मों में नज़र नहीं आ रही थीं. उनकी मेहनत को देखते हुए इतनी उम्मीद तो की ही जा सकती है कि उनकी आने वाली फिल्में उनके करियर को सही दिशा देंगी और इस बार अपने अभिनय से दर्शकों को लुभाने में वाकई सफल साबित होंगी.

चौथी दुनिया ब्यूरो

feedback.chauthiduniya@gmail.com